

## वीर सेवा मन्दिर दिल्ली



क्रम संख्या

संज्ञा संख्या

संज्ञा

## ATORS.

& Mill-owner, Cawnpore  
brotra Rais, Manager, Gurnaram  
wnpore  
Abuwala) Landlord and Banker,

n Charan Shukla Road, Cawnpore.  
grawal Pro Firm Kishorilal

foolchand Mohanlal, Cawnpore  
tor, Lakshmi-Ratan Cotton Mills,

Rupnarain Ramchandria Cawnpore

- 9 B Ram Naram Garg B A, Rais and Mill owner Cawnpore.
- 10 L Manohar Lal Jam Firm Lachmandass Baburam, Cawnpore
- 11 Vangyabhusan, Sethi Lakhand B Sethi Pro Binod Mills,  
Ujjain
- 12 P Rama Kant Misra Ramesh Cawnpore
- 13 L Hardyal Nevatiya Dealer in sugar Cawnpore
- 14 Rt Hon'ble Dr Sri Tej Bahadur Sapru P C Allahabad
- 15 P Lakshmi Kant Tripathi M A, Lecturer in Indian  
History Christ Church College Cawnpore
- 16 H H Maharana Shri Jorawar Singh Ji Pratap Singh Ji  
Sant State Sant Rampur (Gujerat)
- 17 H H Babu Shri Jamant Khanji Manvar Khanji, Nawab  
of Balasnor (Gujerat)
- 18 Raja Bahadur Narayan Lal Bansil Lal Pitti, Kalbadevi Road,  
Bombay
- 19 Sethi Madan Mohan Ram Naram Ruiya Mill-owners Bombay
- 20 Syt Chiranji Lal R Loyalka, Share and Stock Brokers, Fort,  
Bombay
- 21 H H Maharajadhiraj Maharana Sahib Bahadur of Udaipur,  
(Mewar)
- 22 Shumant Yeshwant Rao Vikramshah, minor Rajah of Jawhar  
State (Gujerat)
- 23 Hazur Office, Rajppla State, Rajppla

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
बौंस का अचार	प्रतिमेर	४ दाम	करील के फूलो का अचार	प्रतिमेर	१ दाम
सेब का अचार	"	८ "	करील के फूलो का अचार	"	१ "
बिही का अचार	"	६ "	जमीरुद का अचार	"	१ "
लहसुन का अचार	"	१ "	सरसो का अचार	"	१ "
प्याज का अचार	"	२ "	तुर्गई का अचार	"	१ "
बैंगन का अचार	"	१ "	ककडी का अचार	"	१ "
किशमिश और मुनक्के का अचार	"	८ "	खीरे का अचार	"	१ "
कचनार का अचार	"	२ "	कचालू (बेंड) का अचार	"	१ "
आड़ू का अचार	"	१ "	मूली का अचार	"	१ "
संहरजन का अचार	"	१ "			

आईन २८ ।

## मेकाखाना ।

सम्राट फलों को अनुपम न्यायकारी (ईश्वर) का बड़ा ही दुर्लभ पदार्थ समझता और उन पर बहुत ध्यान देता है। इस कारण ईरान और तुर्कान के

१—मूल आईने-अकबरी (दफ्तरे-अवल इरमंज़िले-आबादी, पृ० ६०, एशियाटिक सोसायटी बंगाल द्वारा प्रकाशित) में रबी की जिंशों की तालिका में एक अन्न का नाम केवू (हिन्दी अनुवाद पृ० १२५) लिखा हुआ है। आईने-अकबरी के तृतीय ग्रन्थ में 'आईने-नोज़दह-साला' के प्रकरण में सूबा आगरा, इलाहाबाद, अवध, दिल्ली, लाहौर और मुल्तान में भी इस का उल्लेख हुआ है। आईने-अकबरी के मराठी और गुजराती भाषा में जो सचित्त अनुवाद श्री बी. बी. लेले तथा सेठना रतन जी फ़ाम जी

कृत क्रमशः उपलब्ध हैं, उनमें कीवू या केव या केवू के लिये क्रमशः कोद्र और कोद्रा शब्द प्रयुक्त हुये हैं। उक्त दोनों शब्दों के लिये हिन्दी में कोदों शब्द है (आयुर्वेद का गुजराती ग्रन्थ 'आर्यभषक' पृष्ठ २२५)। प्रथम ग्रन्थ की खरीक की जिंशों के प्रयोग में भी कोद्रम आया है। जो कोदों का ही दूसरा नाम है। फ़ारसी के एक कोष में 'केवू' का अर्थ मटर लिखा हुआ है परन्तु मटर के लिये आईने में दूसरा शब्द सुरांग दिया हुआ है। इससे मालूम होता है कि केवू कोई दूसरी ही चीज़ है।

उद्यानकला-विशारद यहाँ आकर बस गये हैं और उनकी खेती-बारी बहुत बढ़ गई है। यहाँ खरबूजा तथा अंगूर बढ़िया और अधिकता में होने लग है। इसी

जेरट् ने आईने अकबरी के अपने अनुवाद में इसके लिये *Lotus* शब्द प्रयोग किया है (*Jarret's translation of Amr Akbar Vol II, P 71*), जिसका अर्थ सहिजन और काहू है (*Mathmagisads Trihual Dictionary*)। काहू का पौधा गोभी की तरह का होता है। उसकी पत्तियाँ लम्बी, मुलायम और दलदार होती हैं। भारतवर्ष के बागीचों में यह बोया जाता है। पार्श्वत्य देशों में इसका शाक खाया जाता है। अनेक स्थानों में इससे एक प्रकार की अलूम निकाली जाती है, जो पोस्ते की अफीम से बहुत हलके नशे वाली होती है। इसके बीज दवा के काम में आते हैं। उसमें तेल निकलता है, जो सिर दर्द में लगाया जाता है (शब्दसागर)। पर काहू ही केवू है, इसमें सन्देह है।

कई चावलों के नाम आजकल बदल गये हैं। आईने-अकबरी की एक प्रति में जिजिन का पाठ फ़िजिन है। दूका के पाठान्तर दख, दकह, डीकर और वकमनह है। देहरादून आदि में नहा नाम का एक चावल होता है, कदाचित् वही दूका है।

कुरी—अरहर की फलियों (शब्द सागर)। खुदिरी या कुरी एक प्रकार का छोटी जाति का अन्न जैसे बाजरा, साँवाँ, कादो आदि (*India at the death of Akbar Appendix A*)।

खेना—कगनी या सोवों की जाति का एक अन्न, जो चैत-वैसाख में बोया और आषाढ़ में काटा जाता है। कटाई के तीन चार दिन पहले तक इसे सींचते रहते हैं। यह हिमालय में दस हजार फुट की ऊँचाई तक होता है। यह पानी और दूध में चावल की तरह पका कर खाया जाता है

और इसकी रोटियाँ भी बनाई जाती हैं। इसे लोग पौष्टिक मानते हैं। पंजाब में बहुधा यह चारे के लिये बोया जाता है।

कंकलू—इसका शुद्ध नाम कनगुछू है। यह एक शाक है, जो भूमि से स्वतः उत्पन्न होता है।

उपलहाक—देहात में होता है। बहुधा मुखाकर खाया जाता है। यह प्रसूता स्त्रियों को शाक में दिया जाता है।

जीतू—कदाचित् यह बंगाल देश का प्रसिद्ध शाक जीवन्ती या जन्तुका है। तवलकिशोर। आईने-अकबरी के हाशिये में जीतू या जैतू का अर्थ लालशाक लिखा है।

चूका—यह शाक खट्टा होता है। देश हमें हलका, रुचिकारक और दीपक मानत है।

लालमिर्च—(देखिये टृष्ट १५८, कार्ना मिर्च और मोठ क बीच में) घाम्मन में यह बड़ी पीपल है, लालमिर्च नहीं।

अश्वरगार—यह ईरात दूरान में होता है। इसका पेड़ में कोटे होते हैं। जड़ का अचार डाला जाता है। यह दो प्रकार का होता है।

मूल ग्रन्थ की एक प्रति के फ़ुट-नोट में शाकों की उपज की ऋतुएं भी दी हुई हैं — सोआ, पालक, मूली, शक्राकुल और अदरक जाड़े में, दुँरीतू, लहसुन के बीज और पाई वसन्त ऋतु में, प्याज, लहसुन गोभी, जीतू, चूका, बधुआ, और चोलाई ग्रीष्म ऋतु में, पोदीना सब ऋतुओं में होता है। कंकलू, उपलहाक और रतसका की ऋतुयें नहीं लिखी हैं।

तुलनात्मक अध्ययन के लिए विभिन्न समयों की जिसों के भावों की तालिका दी जाती है—

प्रकार तरबूज, आड़, वादाम, पिस्ता और अनार आदि भी फलने लगे हैं। जब जिसो की दगों की तालिका।

जिस	अलाउद्दीन का नियत किया हुआ भाव	मुहम्मद तुगलक के समय का भाव	फ़ीरोज़ तुगलक के समय की दरें।	ज़िला दिल्ली की सामान्य दरें।	कानपुर का थोक बाज़ार भाव*
	१२६५-१३१६ ई०	१३५५-५१ ई०	१३५५-८८ ई०	१८५४-७४ ई०	१२ जून १९३६ ई० आषाढ क० ८ म० १६३३ वि०
गेहूँ	७ जीतल प्रतिमन	१० जीतल प्रतिमन	१० जीतल प्रतिमन	प्र० रु० २७ ११	१ ० १४ ०
जौ	४ " "	८ " "	४ " "	" ३६ ०	१ ० २३ ८
चना	५ " "	४ " "	४ " "	" ३४ ५	१ ० २० ०
शर्बिल (धान)	५ " "	१५ " "		" ३७ ०	
चावल	" "	" "	" "		१ ० ११ ०
ढाल			१ " १० सेर		
उरद	५ " "			" २८ ०	१ ० १२ १२
घी	१ " २ सेर		२ " १ सेर		४१ ० ४८ ८
शकर	१ " १ " १ टका मफ़ीद	" "	३-३ १ " "		८ ० ४० ०
गन्	१ " १ " "	" "			१ ० १६ ०
सियरी	" "	१ टका मफ़ीद	" "		१ ० ४ ३
निल का तेल	१ " ५ " २ सेर				१२ ८ प्रतिमन
नमक	५ " "				५ ८ ११
धाना					३४ १२ १ रु भर
चौड़ी					४६ १२ १०० "
बेल					
मेर					म० क०
मूँग					१ ० १२ ८
अरहर					१ ० १६ ०
मटर सफ़ेद					१ ० १५ ०
हुआर					१ ० १८ १२
बाजरा					१ ० २२ ८
मकाई					१ ० २५ ८
लाही					१ ० २५ १२
सरसो पीली					१ ० ७ १४
अड़ी					१ ० १० ८
अलसी					१ ० ७ ८
निल काला					१ ० ४ १२
पोस्ता					

\* स्थानीय दैनिक पत्रों के आधार पर।

† तेल में १ रुपया १८० घेन का होता है आर ८० रु० भर का सेर तथा ४० सेर का मन।

में काबुल, कंधार और कश्मीर के प्रदेश साम्राज्य में सम्मिलित हो गये हैं, तब से फलों की मोटो पर मोटे आने लगी हैं। साल भर उनसे मेवाफरोशों के घर भरे रहते हैं और बाजारों में खलिहान लगे रहते हैं।

हिन्दुस्तान के खरबूजे इलाही महीने फरवरदीन (चैत-वैशाख) से फलने लगते हैं और उर्दाबिहिश्ति (बैशाख-ज्येष्ठ) में बहुत ज्यादा होते हैं। वे मिष्ट, कोमल, पोले और सुगंधित होते हैं, विशेषकर नाशपाती, बाबाशेखी, अलीशेरी, अल्बह बर्गे-नै और दूद-चिराग इत्यादि जातियों के खरबूजे। वे दो माम तक और रहते हैं। शहरंवर (लगभग कुंवार) के आरम्भ में कश्मीर में आने लगते हैं। इनके समाप्त होने के पहले से ही काबुली खरबूजे भरने शुरू हो जाते हैं। आज़ुर महीने (लगभग पूस) में बदख्शों से कारवाओं (व्यापारियों या यात्रियों का समूह) द्वारा आने लगते हैं; और दई मास (लगभग माघ) तक उनका तारतम्य नहीं दूटता। जिस ऋतु में वे जाबुलिस्तान में फलते हैं, पंजाब प्रदेश में भी बढ़िया

अकबर के समय की ज़िम्नो की सूची को वर्तमान-काल की सूची से मिलान करने पर ज्ञात होता है कि ३०० वर्ष में कई चीज़ों के नाम बदल गये और कुछ में लेखकों की अभावधानी से पाठान्तर हो गये जैसे केवू, रतसका और अदरशाख आदि। कुछ ऐसी भी ज़िम्नो हैं जो नष्ट हो गई या होती जा रही है, जैसे, सॉर्बो, चेना आल और नाल आदि। साथ ही अकबर के बाद भारतवर्ष में कई नई ज़िम्नो भी आ गई हैं जैसे अखों में मकार्द, ओट्स, शाकों में शाक-शिरामणि आलू (पोटैटो या बटाटा जो १५८० ई० में अमेरिका में यूरोप गया। भारतवर्ष में इसका उल्लेख उस भोज के प्रसंग में मिलता है, जो आसफ़ज़ाँ ने सर टामस रो को १६१२ ई० में अजमेर में दिया था), टमाटर (टोमैटो), फलाहार में शकरकन्द, चबैय और तिलहन में सूँगफली; पेय-पत्तियों में चाय और काफ़ी, राह-चलते खाने, पीने और सूँघने के पदार्थों में तम्बाकू।

अकबर के समय से अब तक खाद्यद्वारा

के पारम्परिक सापेक्ष मूल्य में बहुत कम परिवर्तन हुआ है, अर्थात् जौ, गुआर और चना के मूल्य का जैसा आनुपातिक सम्बन्ध इस समय है, अकबर के समय में भी लगभग वैसा ही था (*India at the Death of Akbar* P. 102-3) यद्यपि ज़िम्नो की दूर अकबर के समय से सन् १६१२-१४ ई० में सात गुनी अधिक होगई (*Moreland From Akbar to Aurangzeb* P. 171)। युद्ध काल में ज़िम्नो के मूल्य में अट्टारह से बीस गुने तक की अधिकता होगई, जैसा कि यूरोपीय महासमर के समय सन् १६१४ से १८ ई० तक देखने में आया। उस समय कानपुर के बाज़ार में घी छे छट्ठाक का और गेहूँ पाँच सेर तक का बिक गया। परन्तु युद्ध समाप्त होने पर मूल्य फिर सामान्य स्थिति पर आ गया। अकबर के समय में घी तथा तिलहन अन्न की अपेक्षा अधिक सस्ता था। परन्तु साफ़ शकर और नमक आजकल से महगे थे। खाने की सामग्री जैसी उस समय थी, प्रायः वैसी ही आजकल है। यद्यपि उनके मूल्यों में बहुत अन्तर हो गया है।

होने लगते हैं; और बिल्ला जाड़े के अतिरिक्त भकर और उसके आस-पास बहुत खरबूजे होते हैं। खुरदाद (आषाढ) से अमुरदाद (सावन-भादो) तक अनेक प्रकार के अंगूर आनन्द देते हैं। शहरेवर में कश्मीरी अंगूर फलता है और बाजारे भर जाती है। कश्मीर में एक दाम के आठ सेर अंगूर मिलते हैं, और एक मन पर दो रुपए किराया लगता है। कश्मीरी लोग उनको शंकुकार (गाजर जैसी शकल की बनी हुई) टोकड़ियों में पीठ पर लाद कर चलते हैं और देवनों में बड़े भले मालूम होते हैं। मेहर (कार्तिक) से उर्दाबिहित तक अंगूर काबुल में आते हैं, साथ ही कीलास<sup>१</sup>, जिसको सम्राट् शाहआल कहता है, अनार-वेदाना, सेब, नाशपाती, बिही, अमरूद, शफ़्तालू<sup>२</sup>, जर्दआलू<sup>३</sup>, गिर्दआलू और आलूचा<sup>४</sup> आदि भी लाये जाते हैं। बहुत से फल हिन्दुस्तान में भी पैदा होते हैं। खरबूजे, नाशपाती और सेब समरकंद से भी आते हैं।

सम्राट् जब कभी शराब पीता, अफ़ीम खाता या कोकनार<sup>५</sup> (सम्राट् इसके सबरस कहता है) ग्रहण करता है, तो मेवेवाले नौकर मेवे के ग्वांचे भर कर उसके सामने लाते हैं, थोड़ी सी मेवा तो वह खाता है और अधिकतर बाँट देता है। संवक हर मेवे में निशान लगा देते हैं, और उससे उसकी श्रेणी जान लेते हैं। प्रथम श्रेणी के खरबूजे पर सिर की ओर से दो भागों में विभाजित करना हुआ एक रेखा का चिह्न लगाते हैं, इसी प्रकार दूसरे खरबूजों पर उनकी श्रेणियों के अनुसार एक-एक लकीर बढ़ाने जाते हैं।

१—ब्लैकमेन ने अपने अनुवाद में इस शब्द के लिए *Chernes* शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ आलूबालू, शाहदाना या विलायती मकौय होता है। एफ़ एस ग्राउस (F. S. Growse, C. S.) के लेखानुसार कश्मीरी भाषा में चेरीज़ के लिए गीलास शब्द आज तक प्रयोग किया जाता है, जो कीलास में मिलता-जुलता है (Blochmann's translation of Ain, P. 65, note 1, and P. 616, note 2)।

२—आड़ू। ३—ज़ुबानी।

४—आलूचे का पंख गढ़वाल से कश्मीर तक हिमालय पर होता है। इसका फल गोल, पकने पर पीला और स्वाद में खट-

मिट्टा होता है, और पंजाब में बहुत खया जाता है। अफ़ग़ानिस्तान में आलूचे का जानि का एक फल आलूबुजारा के नाम से भारतवर्ष में आता है। फल की गुठली में जो नेल निकलता है, वह कहीं कहीं जलाया जाता है। पंख में एक प्रकार का पीला रंग निकलता है। लकड़ी मुलायम होती है। उसमें रंगीन और नज़्काशीदार सड़क बनाने हैं।

५—पोस्ते की बाँड़ी, जिसके अन्दर पोस्ता रहता है और उसको आँकने से—अर्थात् उसके ऊपर लोहे की अकनी में रेंवाएँ खींचने से—अफ़ीम का प्राथमिक रूप (दूध) निकलता है।

इस कार्यालय में मंसबदार, अहदी और अन्य सैनिक काम करते हैं।  
प्यादों का वेतन १४० दाम से १०० दाम तक है।

विभिन्न प्रकार के फलों के नाम, ऋतु, स्वाद और मूल्य का विवरण तालिका में लिखता हूँ और अपने समय की दशा का परिचय देता हूँ —

### तूरान आदि देशों के फल ।

नाम	परिमाण <sup>१</sup>	मूल्य	नाम	परिमाण	मूल्य
अरहंगर का खरबूजा (प्रथम श्रेणी)	१	२ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> रु०	काबुली और फिरंगी सेब	५ से १० तक	१ रु०
अरहंग का खरबूजा (दूसरी वा तीसरी श्रेणी)	"	१ रु० से २ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> रु० तक	कश्मीरी अंगूर	१ मन	१८८ दाम
काबुली खरबूजा (प्रथम श्रेणी)	"	१ रु० से १ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> रु० तक	छुहागा	प्रतिसेर	१० दाम
काबुली खरबूजा (दूसरी श्रेणी)	"	१ रु० से १ रु० तक	किशमिश	"	६ दाम
काबुली खरबूजा (तीसरी श्रेणी)	"	१ रु० से १ रु० तक	आबजोशर	"	६ दाम
ममरकंदी सेब	७ से १५ तक	१ रु०	आलू बुरागा	"	८ दाम
बिही	१० से ३० तक	१ रु०	खुबानी	"	८ दाम
अमरुद	१० स १०० तक	१ रु०	कन्धारी दाम	"	७ दाम
अनार	६ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> रु० से १५ रु० तक	६ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> रु० से १५ रु० तक	अंजीर	"	७ दाम
			मुनक्का	"	६ <sup>३</sup> / <sub>४</sub> दाम
			उन्नाव	"	३ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> दाम
			बादाम की गिरी	"	२८ दाम
			बादाम	"	११ दाम
			पिस्ता	"	६ दाम
			चिलगोजा	"	८ दाम
			सिजिद <sup>२</sup>	"	६ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> दाम

१—परिमाण में तौल, नाप और संख्या शामिल है। जिन संख्याओं के सामने तौल नहीं लिखी है, उनको उतने नग (तादाद) समझना चाहिये। मूल ग्रंथ में फलों के नाम तो दिये हैं, किन्तु उनमें से कुछ के मूल्य, परिमाण और ऋतु का उल्लेख नहीं है।

२—बदलशों में एक कस्बा है।

३—गरम पानी के साथ उबाला हुआ मुनक्का, बड़ी किशमिश।

४—इसका उच्चारण सजिद भी है। यह उन्नाव के समान होता है। कानपुर में अत्तारों के यहाँ मिलता है।

### तूरान आदि देशों के फल (शेषांश)

नाम	परिमाण	मूल्य	नाम	परिमाण	मूल्य
पिस्ता की मींगी	प्रतिमेर	६ दाम	फुन्दुक <sup>१</sup>	प्रतिमेर	३ दाम
अखरोट की गिरी	"	४ <sup>१</sup> दाम	अखरोट	"	२ <sup>१</sup> दाम

### हिन्दुस्तानी मीठे फल ।

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
आम <sup>१</sup>	वर्षा	१००	४० दाम	नूत	वसन्त	प्रतिमेर	२ दाम
अननास	जाड़ा	१	४ "	मठाफल <sup>२</sup>	हमेशा	१	१ दाम
कमला <sup>३</sup>	जाड़ा	२	१ "	खरबूजा	ग्रीष्म	प्रतिमेर	४० दाम
ऊख	जाड़ा	२	१ "	तरबूज	वर्षा के	१	२ दाम से १०
कटफल	ग्रीष्म	२	१ "		अंत में		दाम तक
कैला	वर्षा	२	१ "	खिरनी	वर्षा	प्रतिमेर	४ दाम
बेर	जाड़ा	प्रतिमेर	२ "	महुआ	ग्रीष्म	"	१ दाम
अनार	वर्षा	प्रतिमेर	८० से १०० दाम तक	डीफल <sup>४</sup>	शरद	"	४ दाम
अमृतफल <sup>५</sup>	"	२	१ दाम	नेटू	ग्रीष्म	"	० दाम
अजीर	ग्रीष्म	प्रतिमेर	१ दाम	उमीरा <sup>७</sup>	जाड़ा		
				खजूर	वर्षा	प्रतिमेर	४ दाम

१—फ़िलबर्ट (Filbert) नामक विलायती मेवा (Blochmann) । यह फल बेर के समान लाल रंग का होता है । इसकी बनावट मनुष्य की अंगुलियों की पोरों जैसी होती है । कवि प्रायः प्रियतम के होठों की इससे उपमा देते हैं । किन्तु मैंने जो कानपुर के अत्तारों के यहाँ फुन्दुक देखा है, वह कंजे की शकल से मिलता-जुलता है । उसकी मींगी बहेरे की मींगी के सदृश, परन्तु कुछ बड़ी होती है ।

२—फलों के विवरण आगे देखिये ।

३—आसाम-बंगाल की मीठी नारंगी ।

४—संस्कृत के कोपो में नाशपाती, गुजराती और मराठी में रामफल, ब्लाक्मैन के "आईन" के अनुवाद में अमरूद ।

५—संस्कृत में श्रीफल या वेल । ब्लाक्मैन के अनुवाद में शरीफा (Custard apple), किन्तु फुटनोट में लिखा है कि मूलग्रंथ में जो यह लिखा है कि यह बारह मास फलता है, सो गलत है । यह बात अगले फल अर्थात् खरबूजे पर लागू होती है । (Blochmann's translation P. 60)

६—इसका उच्चारण डेफल भी है ।

७—यह शब्द कोपों में नहीं मिलता है । मालूम होता है कि यह उशीर का अपभ्रंश है । उशीर का अर्थ गडरे की जड़ या खस है, जो टट्टी और इत्र बनाने के काम आता है । पर उशीर की गणना फलों में नहीं है ।



### हिन्दुस्तानी मीठे फल (शेषांश)

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
अंगुहल <sup>१</sup>			..	गुंभी	शरद	प्रतिसेर	४ दाम
डेली <sup>२</sup>	वर्षा	प्रतिसेर	१ दाम	करहरी <sup>३</sup>	ग्रीष्म	..	४ ..
गूला	..	..	.	तररी <sup>४</sup>	.		..
भूलश्री	जाडा	प्रतिसेर	४ दाम	बंगा	वर्षा	२	१ दाम
तरकुल	ग्रीष्म	२	१ दाम	गूलर	वसन्त	प्रतिसेर	२ ..
(ताड़ का फल)				पीलू <sup>५</sup>	ग्रीष्म	..	२ ..
पनियाला	वर्षा	..	२ दाम	बरौता	ग्रीष्म		
लहसुआ	ग्रीष्म	१ सेर	१ दाम	पियार	वर्षा	प्रतिसेर	४ दाम

### सूखे फल ।

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
नारियल	शरद	१	४ दाम	मखाना	शरद	प्रतिसेर	४ दाम
पिंडखजूर	ग्रीष्म	प्रतिसेर	६ ..	सुपारी	..	..	८ ..
अखरोट	..	..	८ ..	कैवलगाट्टा	ग्रीष्म	..	२ ..
चिगौजी	..	..	४ ..	×	×	..	..

### पकाकर खाये जानेवाले फल ।

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
परवल	वर्षा	प्रतिसेर	१२ दाम	तुरई	वर्षा	प्रतिसेर	१२ दाम
कद्दू	..	१	२ ..	कंदूरी <sup>६</sup>	..	..	१२ ..
बैंगन	सर्वदा	प्रतिसेर	१२ ..	सेब (सेम)	..	..	१२ ..

१—अकोहर ।

२—शेखपुरा ( पंजाब ) में होता है ।

३—पकने पर इसका फल काले अकोहर के समान होता है ।

४—मराठी तरवी, कांटेदार वृक्ष, लाल बीज, तिक्त मधुर बन्धफल, शोलापुर जिले

में होता है ।

५—दक्षिणी भारत के एक कांटेदार वृक्ष का फल, जो लाल और काले रंग का होता है । यह वायु और गुल्म रोग नाशक होता है । किन्तु आबनूस का फल तैदू कहलाता है ।

६—कुंदुरू ।

**पकाकर खाये-जानेवाले फल (शेषांश)**

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
पेठा	वर्षा	प्रतिसेर	२ दाम	गाजर	शरद	प्रतिसेर	१ दाम
करेला	"	"	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "	सियाड़ा	वर्षा	"	३ "
ककोरा <sup>१</sup>	"	"	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "	सालकर	शरद	"	२ "
कचालू (बडा)	"	"	२ "	पिडालू	"	"	२ "
चचेडा	"	"	२ "	सियाली <sup>३</sup>	ग्रीष्म	"	"
जमीकन्द	"	"	१ "	कमेरू	शरद	"	३ दाम

**हिन्दुस्तानी खट्टे फल ।**

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
नीबू	ग्रीष्म	४	१ दाम	वीपः	वर्षा	—	—
अमलघेत	वर्षा	४	१ "	विजौग	"	१	८ दाम
गलगल	"	२	१ "	आंवला	ग्रीष्म	प्रतिसेर	२ "

**खटमिट्टे फल ।**

नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य	नाम	ऋतु	परिमाण	मूल्य
इमली	ग्रीष्म	प्रतिसेर	२ दाम	कैथ	वर्षा	४	१ दाम
बड़हल	"	१	१ "	कांकू	—	—	—
कमरख	शरद	४	१ "	पाकर	वर्षा	२ सेर	१ दाम
नारंगी	"	२	१ "	करना	"	१	१ "
पहाड़ी अंगूर	ग्रीष्म	—	—	लभेडा	ग्रीष्म	—	—
जामुन	वर्षा	प्रतिसेर	१ "	जंभीरी	वर्षा	५	१ दाम
फालसा	ग्रीष्म	"	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "	गरना	—	—	—
कगौदा	वर्षा	"	१ "				

१—बन करेला ।

२—भसीड़ा, कमल की जड़ ।

३—बिदारीकंद ।

४—एक अग्रमिद्ध फल (लुगाते-कबीर) ।

हिन्दुस्तान के फल मीठे, खटमिट्टे और खट्टे होते हैं, और हर एक फल नाना प्रकार का होता है। उनमें से कुछ सूख भी मज्जा देते हैं और कुछ आम में पकाकर उपयोग में लाये जाते हैं। अस्तु मैं कई-एक को गिनाता हूँ, और कुछ का थोड़ा-सा विवरण लिखता हूँ।

आम—इसे फारसी भाषा में नगजक कहते हैं, जैसा कि मीरखुसरो अपने एक पद्य में कहता है। रंग, सुगंध और स्वाद में यह फल अद्वितीय होता है। ईरान और तूरान के कुछ विचारवान आम को, खरबूज और अंगूर में भी अधिक उच्चपद प्रदान करते हैं। आकार-प्रकार में वह जर्दआल, बिही, नाशपाती और खरबूजे के समान होता है। तैल में वह मेर भर का और कभी इससे भी भारी होता है। वह हरा, पीला, लाल विभिन्न रंगों का तथा स्वाद में मीठा और खटमिट्टा होता है। आम का वृक्ष मुहावना होता है, विशेषकर नौरस। वह अखरोट के पेड़ से अधिक बड़ा होता है। उसके पत्ते वेत के पत्ते के सदृश, परन्तु उनमें बड़े होते हैं। पतझड़ में गिर जाने के बाद, वे नए-नए हरे पीले, नारंगी, आदि तथा आम के रंग के निकल आते हैं। वह वसन्त ऋतु में आरम्भ में फलता है, और उसका फल अंगूर के फूल के समान होता है। और सुगंधित होता है, और वृक्ष में लगा हुआ बहुत ही विलक्षण मालूम पड़ता है। जब फल आ जाता है, तो उसमें एक माम के पश्चात् खटाई आती है तब उसमें मुग्ध और अचार बनाने हैं।

१—नगजक गुश नजकुने बोस्तां,  
नगज-तरी नेमते हिन्दोस्तां।  
मेवण नगजक हमज आगाज तर,  
ताहद अजाम सजावारपुर।

अर्थात् भारतवर्ष का यह अपूर्वतम फल प्रारंभ से समाप्ति तक खाने योग्य होता है। नगजक का अर्थ अपूर्व, उत्तम और स्वादिष्ट है। “कुरानुस्मादेन”

२—आम उत्तर पश्चिमी सीमा-प्रान्त को छोड़कर, सारे भारतवर्ष में होता है। भूटान में कुमायूँ तक हिमालय पर इसके जंगली पेड़ भी पाये जाते हैं। बीज से पैदा हुये आमों को बीजू या तुम्मी आम कहते हैं। अकबर के राजत्व-काल में कदाचित् कलमी आम लगाने की प्रथा

अप्रचलित थी। ‘आर्दने-अकबरी में कलमी आमों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। कलमी आम लगाने की तरकीब यह है —

एक गमले में बीज रखकर पोधा उत्पन्न करते हैं, और उसे उत्तम पेड़ के पास लेजाकर इसकी एक डाली उत्तम पेड़ की डाली से कमकर बांध देते हैं। जब दोनों डाले एक होजाती हैं तो गमले के पोधे को अलग कर लेते हैं। दूसरी रीति यह है कि बढ़िया आम की पतली डाली को काट कर बीजू पोधे के टूट में मिट्टी के साथ कसकर बाँध दते हैं। कुछ दिनों में वे दोनों जुड़ जाते हैं। आम के लिए हड्डियों की खाद अधिक उपयोगी है। आम के अनेक भेद हैं, जैसे बग्गई, मालदह, लगडा दशहरी, सफेदा आदि।

जब तक उसकी गुठली कड़ी नहीं होती, कलिये? में स्वाद बढ़ता है। जब पड़ पर उसका चोट पहुँचती है, अधिक सुगंधित हो जाता है, उस आम को कोयन्नास कहते हैं। बढ़िया कच्चा तोड़ लेते हैं, और विशेष विधि में सुगन्धित रखते हैं, इस रीति में पकाया हुआ आम अधिक स्वादिष्ट होता है। अधिकतर आम ग्रीष्म ऋतु में पकने लगते हैं और वर्षा तक पक जाते हैं। कुछ वर्षा काल के आरम्भ में पकना शुरू होते हैं और जाड़े के आरम्भ तक परिपक्व हो जाते हैं, उनको भट्टिया (भट्टियाँ) कहते हैं। बहुत कम पेड़ पूरे साल भर फलते और फलते हैं। कुछ आम कच्चेपन में ही पके का काम करते हैं वे शीघ्रता में तोड़ लिये जाते हैं। यदि कुछ दिन और पड़ में लगे रहे तो मिठास की अधिकता से उनमें कीड़ पड़ जाँय। आम हिन्दुस्तान में सब जगह फलता है, परन्तु बंगाला, गुजरात, मालवा, खानदेश और दक्षिण में बहुत फलता है। वह पंजाब में बहुत कम होता है। पर जब में सम्राट् ने लाहौर को राजधानी बना लिया है, तब से वहाँ भी कुछ अधिक होने लगे हैं। आम का वृत्त चार वर्ष में फलता है। पेड़ को दूध और शीर में भी मीचते हैं, इसमें मिठास बढ़ जाती है। वह एक साल अधिक फलता है और दूसरे साल उसमें कम। परन्तु कई वृत्त एक साल बिलकुल नहीं फलते। जब आम अधिक खाया जाता है तो उसकी गुठली के गूद को दूध के साथ पीते हैं, इसमें वह पच जाता है। पुरानी गुठली का गूदा स्वादिष्ट और खटमिट्टा होता है। दो-तीन साल की गुठली जहरमोहर का काम देती है। यदि अधपका आम दो अंगुल डाली सहित तोड़ ले, और टूटी डाली के गिर पर गर्म मोम लगाकर गाय के घी या शहद में रख दें, तो दो-तीन महीने तक स्वाद नहीं बदलेगा और एक वर्ष तक रंग नहीं परिवर्तित होगा।

**अनन्नास**—इसका सफरी कटहल भी कहते हैं। आश्चर्य यह है कि अनन्नास के पौधे को नौद में लगाकर यात्राआ में साथ रखते हैं और वह फलता है। रंग और शकल में वह लम्बे खट्टे के समान होता है और सुगंध तथा स्वाद में आम के सदृश। उसका पौधा एक गज लंबा होता है, और पत्ते हाथ के आकार के आरेदार होते हैं। फल पौधे के ऊपर लगता है और उस पर कुछ पत्तियाँ उग आती हैं। जब फल पेड़ से तोड़ते हैं तो उन पत्तियों को प्रत्यक् करके अलग-अलग लगा देते हैं, वे फलती हैं। अनन्नास एक बार में अधिक नहीं फलता और उसमें एक से ज्यादा फल नहीं आता।

**कमला**—(नारंगी) केसरिया रंग का, बिही जैसा, हिन्दुस्तान के श्रेष्ठ फलों में से है। उसका वृक्ष नाबू के पेड़ के समान होता है और फल कुछ सुगन्धित होते हैं।

**ऊख**—फारसी भाषा में इसे नैशकर कहते हैं। यह अनेक प्रकार की होती है। एक किस्म की ईख इतनी रसीली और कामल होती है कि गौरैया क चोच मारने पर उससे रस टपकने लगता है। यदि वह हाथ से छूट कर जमीन पर गिर पड़े तो चूर-चूर हो जाय। यह दो तरह की होती है—**कोमल** और **कठोर**। गुड़, शकर, कंद और मिस्री कठोर ईख से बनाये जाते हैं, जिनसे नाना प्रकार की मिठाइयाँ बनती हैं।

१—भारतवर्ष में ऊख, गुड़ और शकर बहुत प्राचीन काल से हैं। ऋग्वेद १० ११, १४ (ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पय कीलाल परिश्रुतम्) में मिश्री का उल्लेख हुआ है। पं० रघुनन्दन शर्मा ने “वैदिक सम्पत्ति” पृ० ७१५ में वैदिक कालीन आर्यों के भोजन पर विचार करते हुये सप्रमाण सिद्ध किया है कि घी, दूध, मिश्री, जल और फल ही आर्यों के प्रधान आहार रहे हैं। महाभारत आश्रम वामो पर्व अ० १ में खाण्डविकों द्वारा खाड (खाण्डव गुजराती में खाड या शकर का कहते हैं और खाड से खाद्य पदार्थ बनाने वाले को खाण्डविक) के मिष्ट पदार्थ बनाये जाने का वर्णन है (चिन्तामणि विनायक वैद्य, महाभारत मांमामा, पृ० २६०-६१)। पुराणों में ऊख या उख की उत्पत्ति उस अम्यात्यै स्वर्ग में बतलाई गई है, जिसको विश्वामित्र ने राजा सत्यव्रत या त्रिशकु (सत्यव्रती राजा हरिश्चन्द्र के पिता) को मशरीर स्वर्ग भेजने के लिए निमित्त किया था। ऊख, गुड़ और शकर में कब और कहा कैसे-कैसे परिवर्तन हुये इसका उल्लेख ‘नोयल डियर’ की प्रसिद्ध पुस्तक ‘केन-शुगर’ (Noel Deerr, Cane-Sugar) के आधार पर किया जाता है —

इतिहास—३२७ ईसा के पूर्व—सिकन्दर

महान् के सैनिकों ने, यूरोप के सब से पहले आगन्तुकों में, भारतवर्ष की इस अपूर्व तिथि—ऊख—को देखा था।

६०० ई०—चीन के सम्राट् त्साई हेंग (Tsai Heng) ने अपने गुमाशतों को शकर बनाने की कला सीखने के लिए बिहार भेजा। उस समय बाज़ार में गुड़ का प्रचलन था। फिर यह धधा पश्चिम दिशा की गया और फ़ारस तथा उसका आस-पास के प्रदेशों में इसकी उन्नति होने लगी। नेस्टोरियन सायन्सों (ये चांग पाँचवीं शताब्दी में कुन्गुन्युनिया के चर्च के अभ्युच्च नेस्टोरियस के अनुयायी थे) उसका कहना था कि ईसा देवरूप भी हैं और मानवरूप भी। उसका देवत्व ईश्वर से और मानवता ‘मिरी’ से है। इस मत के अनुयायी आजकल अर्थात् बीसवीं शताब्दी में मेडोटेरैनियन प्रदेश, ग्रीस और मिस्र तथा कहीं-कहीं अमेरिका और लंदन में भी पाये जाते हैं) ने फ़रात के मुहाने गाडीशापुर में पहले-पहल साफ़ करके सफ़ेद शकर बनाई।

६२७ ई०—बाइज़ेंटाइनम् (Byzantine) द्वारा दस्तगर्ड (फ़ारस) लेने पर लूट के प्रसंग में शकर का उल्लेख हुआ है।

६४१ ई०—अरबों ने मिस्र को जीता और वहाँ ऊख को प्रविष्ट किया।

इसकी खेतीवारी का तरीका यह है कि बढिया ऊखे ठंडी जगह में रख छाड़ते हैं और उन पर नित्य-प्रति पानी छिड़कते रहते हैं। जब सूर्य कुम्भ-र्शाश में होता है, तो कृपक उनके बालिष्ठ-बालिष्ठ भग के अथवा उसमें ज्यादा लव

मेडीटेरैनियन प्रदेश में इस वधे का आरम्भ यही में हुआ।

७२१ ई०—अधुरहमान प्रथम ने स्पेन में ऊख का चलन चलाया।

८२७ ई०—अरबों ने ऊख का मिसली में पहुँचाया। इसी बीच में उच्चकोटि की कलमी शकर मिश्र में तैयार हुई। (मिश्र देश में तैयार होने में बाहर वालों ने उसका नाम मिस्री रक्खा)।

११२० ई० तक स्पेन में भी इस उद्योग में बड़ी उन्नति की। इसके बाद ईसाइयों ने मुसलमानों का भगा दिया। यह अरबों की सभ्यता के स्मारक के रूप में अब भी विद्यमान है।

१२६४ ई०—इंग्लैण्ड के शाही घराने में सब से पहले शकर इस्तेमाल की गई।

१२९६ ई०—विनीशियन व्यापारी टोमामा लारेन्सो (Tommaso Landino a Venetian merchant) ने उनके घटले में शकर के टा जहाज इंग्लैण्ड भेजे। उनका समुद्री डाकुओं ने लूट लिया।

१३४० ई०—पुर्तगीजों द्वारा ऊख वेस्ट इंडीज में पहुँची और मेडीटेरैनियन इण्डस्ट्री की तबाही हो गई।

१४४६—पीट्रो स्पसियाले (Pietro Spessia) ने तीन बेलनों का कोल्ह बनाया।

१५००-१६००—शकर का धंधा यूरोपियन देशों में फैला।

१५४०—प्रेण्टवर्प (ब्रैजियस) ने इंग्लैण्ड को शकर भेजी।

१५४४—इंग्लैण्ड के दो कारखानों (Refineries) में शकर का काम जारी हुआ।

१५७३—जर्मनी में शकर बनाने का काम शुरू हुआ।

१६१२—जापान में पहले-पहल शकर बनी।

१६३७—जावा में विदेश की पहली बार शकर भेजी गई।

१८०२—आर्चर्ड क्रस्ट ने साइलेशिया में चुकन्दर की शकर (Beet Sugar) बनाई।

१८०२-१४—नैपोलियन प्रथम ने चुकन्दर की शकर का उद्योग स्थापित किया।

१८०५—शकर के उद्योग में स्टीम-इंजिन (Steam Engine) का अधिक प्रयोग हुआ।

१८१०—हड्डि के कोयले (Animal Charcoal) में रस छानने की प्रथा जारी हुई। इसमें रस साफ हो जाता है।

१८३२—लोफ़ियाना (अमेरिका) में वायु रहित बन्द कढ़ाह (Vacuum Pan) चालू हुआ। इसके प्रयोग में स्टीम का खर्च कम होता और शकर का दाना छोटा बड़ा बनाया जा सकता है।

१८३६—जावा में वायु रहित कढ़ाह का प्रचार हुआ।

१८३७—पेन्ज़ोल्ट (Penzoldt) ने सेंट्रीफ्यूगल मशीन (Centrifugal machine) का आविष्कार किया। यह ठोकरी या दूध के आकाश की होती है और इसके आस-पास जाली लगी रहती है। मिलेण्डर के घूमने पर यह खूब घुमती है, जिससे शीरा निकल जाता है।

१८४०—भारतवर्ष में ऊख सम्बन्धी

टुकड़े करत है, और पहले से मुलायम बनाई हुई जमीन में उसको लिटा दंत हैं तथा मिट्टी से ढाक देते हैं। जो ऊख अधिक कड़ी होती है, उसे और ज्यादा

अनुसन्धान-कार्य आरम्भ हुआ।

१८४६—सफेद शकर बनाने के लिए गंधक का प्रयोग आरम्भ हुआ।

१८५६—चुकन्दर की शकर में डबल कार्बोनेशन (Double Carbonation) का प्रयोग आरम्भ हुआ। रस में ज्यादा चूना डालकर कार्बन डाईआक्साइड गैस में उसे बिडला देते हैं, जिसमें रस का मेल बैठ जाता है, फिर रस को छान लेते हैं।

१८७६—ऊख की शकर में उपर्युक्त प्रक्रिया की गई। (विशेष विवरण के लिए Dictionary of Economic Products देखिए)।

उपर्युक्त विवरण से समार में शकर-व्यवसाय के प्रचार तथा उसकी उन्नति का पता लगता है। ऊख और चुकन्दर के अतिरिक्त मेल्ल वृक्ष (Mullein) विशेषतर कनाडा और अमेरिका के पूर्वीय भागों में होता है। कनाडा का राष्ट्रीय चिन्ह इसी वृक्ष की पत्ती की आकृति का है। (हिन्दुस्तानी गुआर, एक घास (Sorghum grass) और खजूर की अनेक जातियां से भी शकर बनती है। परन्तु इनमें से आज कल यह विशेष रूप में ऊख और चुकन्दर से ही बना जाता है। गन्ना २० फुट तक बढ़ता है, किन्तु बहुधा वह १२ फुट से अधिक नहीं जाता। [आजकल जाति-सकरी-प्रथा (Cross-breeding) द्वारा कोयम्बटोर (Imperial Sugarcane station, Coimbatore) में उत्तम गुण सम्पन्न गन्ना पैदा करने का यत्न किया जा रहा है (Review of the Sugar Industry of India 1931-35)] इसे गर्म और तर ऋतु चाहिये। गर्मे में ११ से १६ फ्रीसदी तक शुद्ध शकर का अंश (sugar rose)

रहता है किन्तु उसका औसत १३ फ्रीसदी तक का है। १८६० ई० से इस तरह ऊख की समुन्नत जातियों की उपज का यत्न किया गया। शकर बनाये जानेवाले चुकन्दर (Sugar Beet) की उत्पत्ति उस सफेद चुकन्दर से हुई, जो पहले साइलेशिया में घोड़ों के चारे के लिए बोया जाता था। क्रम-क्रम उत्तम बीज की छुटनी हांते-हांते उसके सुकरोज (Sucrose) में ५ से २० सैकड़ा तक की उन्नति हुई। इसका पोधा, गाजर की तरह ऊपर मोटा होता, और पत्तियां पीधे की चोटी पर लगती तथा भूमि तक छितर जाती हैं। फूल बहुत छोटे किन्तु हरापन लिये होते हैं, जो पीछे ग बीज या फल के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। वर्तमान कालीन समस्त शकर बनाये जाने वाले चुकन्दर फ्रान्स और जर्मनी के शुगर-बीट के दो समुन्नत भेदों से निकले हैं। चुकन्दर की कुछ जातियों में २० फासदा तक सुकराज होता है किन्तु औसत १६ फ्रीसदी का है, जैसा कि ऊख में १३ फ्रीसदी। १९१०-११ ई० में चुकन्दर की व्यावसायिक शकर की उपज जर्मनी में प्रति एकड़ २१६ टन थी और १९२५-२६ ई० में जावा में गन्ने की शकर की उपज प्रति एकड़ ५५ फ्री सैकड़ा थी, जो कि चुकन्दर की शकर की उपज से लगभग २ गुना अधिक थी। दोनों जिसों के एक-एक एकड़ में १२ टन धुला हुआ चुकन्दर और ४२ टन ऊख पैदा हुई थी। (Encyclopaedia Britannica, 14th Ed. 1929)

शकर-विशेषज्ञों का मत है कि शुद्ध शकर में सौ में सौ या ९९.९ फ्रीसदी

गहगई मे गाड़ते हैं, और निरन्तर सिचाई करते रहते हैं। सात-आठ महीने के बाद वह तैयार हो जाती है।

शकर (सुकरोज) होती है, और गेंहुआ रंगवाली मे ६८८ फ्रीमदी।

भारतवर्ष में पहले तेलियो के कोल्हुओ के आकार के लकड़ी और पत्थर के कोल्हु चलते थे। उन्ही मे ऊँच पेरी जाती थी। रम को छानकर कड़ाह मे औटाकर राब या गुड बनाते थे। फिर राब मे मिवार के सम्पर्क से शकर बनाते थे। यह शकर सिवारी शकर कहलाती थी, जो खाने में अधिक लाभदायक बतलाई जाती है। ज्यों-ज्यों गुड या गन्ने मे शकर बनाने के कारखाने बढ़ते गये, त्यों-त्यों पुराने ढंग से शकर बनाने का काम कम होता गया।

भारतवर्ष में शकर की उपज और खपत—पहले ज़माने मे अब शकर की उपज भारत-वर्ष मे अधिक हो रही है। सन् १९३४-३५ ई० मे भारतवर्ष मे इस व्यवसाय के सब १५५ कारखाने थे, जिनमे से १४४ गन्ने की फैक्ट्री

और ११ गुड मे शकर बनाने के कारखाने थे।—इन मे से १० पंजाब में, ७४ युक्प्रान्त में, ३४ बिहार वा उड़ीसा में, ७ बंगाल मे, ३ बर्मा में, १२ मद्रास मे, ६ बम्बई में, और ६ देशी राज्यों मे। १९२६-२७ ई० मे शकर के कुल ४७ कारखाने थे। उनमें गन्ने और गुड दोनों को मिलाकर (दशी तरीके से बनाई हुई शकर को छाडकर) कुल १,२१,०२६ टन शकर बनी थी। पर १९३४-३५ ई० मे ७,६८,११५ टन शकर बनी। इसमे से १३० कारखानो मे गन्ने से ५,७८,११५ टन, १२ कारखानो मे गुड से करीब-करीब ४०,००० टन और देशी तरीके से लगभग १,५०,००० टन शकर बनाई गई। भारतवर्ष में सब से अधिक ऊँच की म्वनी मयुख-प्रान्त आगरा व अवध में होती है, जैसा कि सन् १९३४-३५ ई० की उपज सम्यन्धी नीचे की तालिका से प्रकट होता है—

प्रान्त या देशी राज्य	ऊँच का क्षेत्रफल एकड़ो मे	गुड की पैदावार टनो मे
संयुक्त प्रान्त (रामपुर राज्य सहित)	१८ ३६,०००	२७ ५८,०००
पंजाब	४,६७,०००	३ १६ ०००
बिहार और उड़ीसा	४,४५ ०००	६,७३ ०००
बैंगाल	२,७६,०००	४,६२,०००
मद्रास	१,२२ ०००	३ २१,०००
बम्बई ( सिंध और देशी राज्यों सहित)	१ १७ ०००	२ ५८,०००
उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त	४३,०००	४३,०००
आसाम	३३ ०००	३२,०००
मध्य-प्रदेश और बरार	२८,०००	४६ ०००
दिल्ली	८ ०००	५,०००
मेसोर	४५,०००	४१ ०००
हैदराबाद	५१ ०००	६३,०००
बड़ौदा	२,०००	३,०००
भूपाल	५ ०००	४ ०००
जोड़	३४,७१ ०००	५०,८५ ०००



यद्यपि लोग ईख के शीरे की भी शराब बनाते हैं, परन्तु गुड की मदिरा ज्यादा अच्छी होती है। उसके खीचने के बहुत तरीके हैं। उनमें से एक यह है—

इसके अतिरिक्त बर्मा अजमेर-मेरवाड़ा, ग्वालियर, कश्मीर, मध्यभारत, राजपूताना, बनारस राज्य, पंजाब के देशी राज्य और मद्रास के देशी राज्यों में ऊख की खेती के क्षेत्रफल का पंचवर्षीय औसत १,२२,००० एकड़ है, और गुड की उपज का अनुमान १,४३,००० टन है।

बर्मा के सीमा-मार्ग से १९३४-३५ ई० में २४ टन गुड भारतवर्ष में आया। उक्त वर्ष में जलमार्ग से भारतवर्ष में ११५३ टन ऊख और खजूर का असादा (Jaggery)

बाहर गया। स्थल मार्ग से ४,१७६ टन गुड विदेश गया। भारतवर्ष से ६३,०८६ रुपए की ३६३ टन शक्कर जल मार्ग से बाहर गई। स्थलमार्ग अर्थात् भारतीय और बर्मा सीमा-मार्गों से होकर ३४,०३४ टन शक्कर बाहर गई। इसी वर्ष (१९३४-३५ ई०) २,११ लाख रुपए की २,२२,६०० टन शक्कर गुड के अतिरिक्त विदेशों में इस देश में आई। नीचे की तालिका से मालूम होता है कि किस देश से किस मन् में कितनी शक्कर यहा आई —

शक्कर भेजनेवाले देश	१९१३-१४ ई० (युद्ध के पूर्व) टन	१९३४-३५ ई० टन
यूनाइटेड किंगडम	६००	१६,८००
सालोन	१००	
जावा	५,८३,०००	१,७४,६००
मारिशस	१,३६,६००	
स्ट्रेट्स सेटिलमेण्ट्स	२,६००	२००
चीन और हांग-कांग	१,६००	३,६००
पुर्तगीज़ ईस्ट एफ्रिका	—	११,१००
जापान	१००	२,७००
जर्मनी	७००	२००
आस्ट्रिया-हंगरी	७४,०००	
नेदरलैण्ड्स	—	१,८००
बेल्जियम	—	२,१००
फ्रान्स	—	१,०००
ज़िकोस्लोवैकिया	—	१००
यूनाइटेड स्टेट्स	—	०
अन्य देश	२००	७,१००
जोड़	८,०३,०००	२,२२,६००
मूल्य (लाखों में)	१४,२६	२,११*

एक मन गुड़ में, दस सेर वनज की छाल को चूरा करके मिलाते हैं। और उसमें ऊपर उसमें तिगुना पानी डालते हैं। उसमें मटके भर कर जमीन में गाड़ देते हैं और उनके आस-पास घोड़े की मूखी लीद छोड़ देते हैं। उसमें सात से दस

उपयुक्त अकों से मालूम होता है कि शक्कर की आयात में शनै-शनै कमी हो रही है। इसका कारण भारतवर्ष में शक्कर का अधिक परिमाण में बनने लगना है। 'अब इस देश का उत्प-उपजाऊ देशों में एक महत्वपूर्ण स्थान है' (The Indian Year Book, Vol. I, P. 92)। स्थल-मार्ग से भारतवर्ष में विदेशी शक्कर नहीं आई। काठियावाड़ के बन्दरगाहों से होकर जो विदेशी शक्कर ब्रिटिश राज्य में आई, वह तौल में २७,५८० टन थी।

भारतवर्ष में शक्कर की खपत का पता नीचे के अकों से चलता है —

सम्प्राप्त	टन
१ अप्रैल १९२४ का स्टॉक	२५,३५०
१९२४-२५ में विदेशों के लिए	
१९२३-२४ में तयार की हुई	
भारतीय शक्कर —	
गन्ने की शक्कर	४,५३,६६५
गुड़ की शक्कर	६१,०६४
खड़सारी रीति से बनाई	
हुई शक्कर	२,००,०००
जल-मार्ग से आई हुई	२,२२,६००
जल-मार्ग से काठियावाड़ के बन्दरों से आई हुई	१,१०,६६३
सम्प्राप्त का जोड़	१०,७४,२७२

घटाया जाने वाला परिमाण

जल-मार्ग द्वारा पुनर्निर्यात	२,६०४
जल-मार्ग द्वारा निर्यात	३६३
स्थल-मार्ग से निर्यात	३४,०३४

३१ मार्च १९२५ को जो माल स्टॉक में था २२,३७३

५६,३७४

१९२४-२५ में खपने वाला

माल १०,१४,८६८

शीरा और मिठाइयाँ—१९२३-२४ ई० में ८,३७१ रुपए का ४१५ टन शीरा विदेश से इस देश में आया। १९२४-२५ में अनुमानत ४,१०,००० टन शीरा की उपज भारतवर्ष में हुई। जाम और जेलीज़ (Jelly) को छाँचकर १३६० टन (मूल्य १७,६३ लाख रु०) को मिठाइयाँ आई। इसी वर्ष २,४२,४४७ रुपए की ३५,४१८ पौण्ड सेकेराइन (Saccharine), शक्कर संबंधी पदार्थ) आई।

संसार में शक्कर की उपज—१९२४-२५ ई० में चुक्रन्दर और ऊख की २,४६,०४,०० मीटिक टन शक्कर संसार में तैयार की गई, जिसका व्योरा सहस्रों के मीटिक (१ टन=२७ मन म<sup>८</sup> सेर) टनों में दिया जाता है —

बीट शुगर—(चुक्रन्दर की शक्कर) यूरोप में जर्मनी १६७३, डैनज़िग ३३, ज़िको म्लावैकिया ६३८, आस्ट्रिया २२२, हंगरी १२०, फ्रांस १२२३, बेल्जियम २७०, नीदरलैण्ड्स २४३, पोलेण्ड ४४७, डेन्मार्क ६०, स्वीडेन २७२, इटली ३४५, स्पेन ३४६, युगोस्लेविया ६३, रूमानिया १०७, बल-गेरिया २, स्वीज़रलैण्ड १०, यूनाइटेड किंगडम ६६४, आइरिश फ्री स्टेट ७५, फ़िनलैण्ड १२,

दिनो तक मे उयाल आजाता है । उसके पक-जाने की पहचान यह है कि मिठाम कसैली हो जाती है । यदि नशा ज्यादा तेज चाहते है, तो थोडा गुड़

लिटविया ६१, लिथुआनिया १७, टर्की (यूरोपीय और एशियाई) ६६ और एजोरेज़ ३-जोड़ ७०३६ मीटिक टन । सोवियट यूनियन १४६० मीटिक टन । अमेरिका में—यूनाइटेड स्टेट्स ११७८, कनाडा २७, अर्जेन्टाइन ३, उरुग्वे १—जोड़ १२३१ मीटिक टन । एशिया में—जापान ( होक्काइडो ) ३६, मंचूरिया ४, ईरान १—जोड़ ५२ मीटिक टन । आस्ट्रेलिया में—विक्टोरिया ६ मीटिक टन । बीट शुगर ( चुक्रन्दर की शक्कर ) की कुल उपज १७६३ मीटिक टन ।

केन शुगर ( गन्ने की शक्कर )—यूरोप में—स्पेन १८ । अमेरिका में—लैज़ियाना और फ्लोरिडा २५०, पोर्टोरिको ७०८, हवाई ८६२, वर्जिन आइलैण्ड्स २ क्युबा २६११, ट्रिनिदाद १२० बरबडोस ४५, जमैका ७६, पर्टागुआ और सेंट फिट्स आदि ५४, मार्टिनिक और ग्वाडेलोप १०, डोमीनिकैन रिपब्लिक और हैटी ४६७, मेक्सिको २६६, ग्वाटेमाला, कोस्टारिका, हंडुरास, निकाराग्वा, सनमन्वाडोर, पनामा ३७, ब्रिटिश गाहना १३४, डच गाहना १८, अर्जेन्टाइन ३४२, ब्रैज़िल ६७५ पेरू ४००, वेनेज़ुयेला कोलम्बिया इकुआडोर, बोलिविया और पाराग्वे ८१—जोड़ ७,५६८ मीटिक टन । एशिया में—ब्रिटिश इण्डिया ३१२०, जावा ७०३, जापानीज़ इम्पायर ११५४, फ़िलिपाइन आइलैण्ड्स ६३०, चीन, इण्डोचीन और स्याम २७५ जोड़ ५,८८२ मीटिक टन । एफ़्रिका में—मिस्र १३७, मारिशस १८३, रियूनियन ६४, माउथ एफ़्रिकन यूनियन ३२५, मुज़म्बिक ८२, अंगोला, मडेरिया मेडागास्कर, केनिया, यूगंडा, सोमालीलैण्ड,

बेल्जियम कांगो और केप वर्डे ८६ जोड़ ८७७ मीटिक टन । आस्ट्रेलिया में—क्विन्सलैण्ड और न्यू साउथ वेल्स ६५१, क्रिजी आइलैण्ड्स ११५—जोड़ ७६६ मीटिक टन । केन शुगर ( गन्ने की शक्कर ) की कुल उपज १५,१११ मीटिक टन ।

सन् १९३४-३५ में ६७६३ ००० मीटिक टन चुक्रन्दर की ओर १,५१,११,००० मीटिक टन गन्ने की अर्थात् सब मिलाकर २,४६ ०४ ००० मीटिक टन शक्कर संसार मे तैयार हुई । संसार भर में शक्कर का आयात का योग ८४,२२ ००० मीटिक टन निर्यात का जोड़ ८१ ७५,००० मीटिक टन और खपत (Consumption) का जोड़ २,५६ ३७ ००० मीटिक टन रहा (Review of the Sugar Industry of India During the Quinquennium 1931-35 Supplement to the Indian Trade Journal May 21, 1936) ।

शक्कर का संरक्षण—जब शक्कर की उपज अधिक होती है तो उसके खपाने के लिए बाज़ारों की आवश्यकता पड़ती है । स्पर्धा होने पर संरक्षण का प्रश्न उपस्थित होता है । कभी अपने देश के साल को प्रोत्साहन देने के लिए भी बाज़ार पर अधिकार करना पड़ता है । दूसरों के मुकाबिले में लागत से थोडा कम मूल्य पर बेचे बाज़ार पर अधिकार नहीं हो सकता । उस अवसर पर उसके संरक्षण के लिए सरकार की ओर से लागत सम्बन्धी क्षति-पूर्ति के लिए जो कर लगाया जाता है वह बाउण्टी ड्यूटी (Bounty Duty) कहलाती है । प्राचीन काल में इस प्रकार के संरक्षण का पता स्पष्टरूप

और मिलते हैं, और कुछ दवाइयाँ तथा सुगंधियाँ जैसे अंबर और कपूर आदि भी डालते हैं। वे इस मिश्रित में मौस भी गलाते हैं। कुछ लोग इसी मिश्रित को मेल ह्वानकर इस्तेमाल करते हैं, पर अधिकतर उसका अर्क खींचते हैं।

अर्क कई प्रकार से खींचा जाता है। पहला तरीका—वे उपर्युक्त मिश्रित ( शागव ) को तांबे की देग में भरते हैं, और उसके बीच में एक प्याला इस प्रकार रखते हैं कि न वह हिलता है और न उसमें पानी जाने पाता है। फिर देग के मुँह पर औवा ढक्कन जमा देते हैं और उसे खमीर में जोड़कर मजबूत कर देते हैं। इस ढक्कन में पानी भरते हैं, फिर आग जलाते हैं। जब पानी गरम हो जाता है, तो उसके स्थान पर ठंडा पानी भरते हैं। जब अन्दर की भाप ढक्कन तक पहुँचती है, तो उसकी ठंडक से अर्क हो जाती है और प्याले में भग जाती है। दूसरा तरीका—देग को मिट्टी के प्याले में ढाँकते हैं, और उसी रीति में तृट करने हैं। फिर दो नालियों के सिरो को उसमें जोड़ देते हैं। नालियों के दूसरे सिरो को एक-एक घडे में, जो ठंडे पानी पर रखे रहते हैं, जोड़ देते हैं। भाप नालियों के द्वारा घडों में पहुँचती है और अर्क हो जाती है। तीसरा तरीका—एक मिट्टी के सटके को उक्त काष्ठ में भरते हैं और उसमें एक नालीदार चम्मच लगा देते हैं। चम्मच के दस्ते के सिरे को एक नली में जोड़ते हैं और उसे एक घडे में लगा देते

में नहीं लगाते हैं। परन्तु इधर मैशीनरी की वृद्धि के साथ-साथ शर्कर की उपज में भी अधिकता हुई जिसके कारण गवकों अपने-अपने माल की खपत की चिन्ता हुई। १८५० ई० में यूरोप के खुले बाजार में लागत में कम मूल्य पर बिकने में शर्कर की बिक्री और निर्यात पर बाउण्टी-सिस्टम द्वारा व्यवसाय को सहायता पहुँचाई गई। इसी प्रकार १८६७ ई० में डिंगले टैरिफ (The Dingley Tariff) ने शर्कर की उपज पर यूनाइटेड स्टेट्स में बाउण्टी पर साम्यकर लगाया। १८६६ ई० में बाउण्टी-शुगर पर भारतवर्ष में कर लगाया गया। १९०२ ई० में बाउण्टी सिस्टम का अन्त हो गया। बिना सरक्षण के इस युग में किसी भी व्यवसाय का चलना असम्भव होता है। इस बात को दृष्टि में रखकर भारतवर्ष की

वर्तमान ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने इस समय भी भारतीय शर्कर के संरक्षण के उपाय निकाले हैं।

गुड़, असाढ़ा और शर्कर के गुण दोष—विशेषज्ञों का मत है कि शुद्ध शर्कर में ६६८ सुकराज हाता है। इसमें उसमें सत्वोश (Vitamins) और चार (Mineral salt) जो कि जीवन के लिए परमोपयोगी पदार्थ हैं शेष नहीं रहते और यदि रहते भी हैं तो नाम मात्र के। इस कारण स्वास्थ्य के लिए शर्कर उतनी उपयोगी नहीं मानी जाती, जितनी कि वे वस्तुएँ जिनमें उपयुक्त दोनों पदार्थ विद्यमान रहते हैं। असाढ़ा या शर्करा में शुद्ध शर्करा में सत्वोश और चार कुछ अधिक परिमाण में होता है। गुड़ में उक्त दोनों तत्व पर्याप्त अंश में वर्तमान रहते हैं।

है तथा मटके के ढक्कन में ताजा-ताजा ठंडा पानी भरते रहते हैं। अर्क पनालेदार चम्मच से होकर घड़े में आजाता है। कुछ लोग अर्क को दुबारा टपकाते हैं, उसको दोआतशा कहते हैं। यह अर्क बहुत तेज होता है। यदि शराब में हाथ डुबोकर आग में रख दे, तो आग लग जायगी और रंग-रंग की लपटें उठेंगी, परन्तु हाथ को हानि न पहुँचेंगी। आश्चर्य यह है कि जब अर्क के बरतन में आग लग जाती है तो किसी चीज से नहीं बुझती, परन्तु जब उस बरतन का मुँह ढाँक देते हैं तो आग तुरन्त बुझ जाती है।

**कटहल**—कीपा? की शकल का, हरे रंग का, एक गज लम्बा और आधा गज चौड़ा होता है। छोटा कटहल तरबूज के समान होता है। उसका छिलका कौटदार होता है। फल तना, जड़ और शाखाओं में लगते हैं। जमीन के अन्दर का कटहल ज्यादा मीठा होता है। जब दो टुकड़े करते हैं, तो उनमें चारों ओर कोयें निकलते हैं, वे लम्बदार होते हैं। उनको ग्याने समय अर्गुलियाँ चिपक जाती हैं। कटहल का पेड़ अखरोट के वृक्ष के समान होता है, वरन उसमें कुछ अधिक बड़ा, और पत्तियाँ ज्यादा बड़ी। उसका फूल, फल की तरह सुगन्धित होता है। कटहल कच्चा भी तोड़ने है और चूना आदि में पका लेते हैं।

**केला**—उसका पेड़ भाल की तरह का होता है। उसमें पत्ते भाँटे तन में निकलते हैं, और अधिक मुलायम होते हैं। वे उन्न की हड्डी जैसा गिल्ली चौड़ा

१—एक प्रकार का खाना है जा भेट जमीन फट जाती और फल नज़र आने की अंतर्दियों को मारकर करके, पचोनी में लगते हैं। इसका छाल में ऐसा दूध मसाला, चने की दाल और मांसादि रखकर निकलता है, जिसमें खर घन सकल संभव पकाया जाता है। यह पेड़ भारतवर्ष के है। इसकी लकड़ी की नावे और चोखटें हैं। इसकी छाल और घुराटे की बनती है। इसकी छाल और घुराटे की उबालने में पाला रंग निकलता है जिसमें बर्मी-साधु अपने वस्त्र रंगते हैं।

२—यह गर्म स्थानों में होता है, जैसे भारतवर्ष, बर्मा, चीन, मलायाद्वीप अमेरिका, दक्षिणी यूरोप और अफ्रीका आदि। मर्नबान, चपा चीनिया, मालभोग आदि केले की अनेक जातियाँ हैं। फलियों की पत्तियों की पत्रों और फलियों से भर हुये पूरे डंठल को घोड़ कहते हैं। जावा द्वीप में केले की एक जाति ऐसी है, जिसका फूल पेड़ी के

१०० तक फल लगते हैं। २२ मीटर तक के फल देखे गये हैं। खुजा और घीला जातियों में से खुजा जाति का फल बढ़िया होता है। फल आठवें वर्ष में लगता और पन्द्रहवें तक फलता है। नए पेड़ की डाली में पुराने के तने में और बहुत पुराने की जड़ में फल लगते हैं। जड़ में फल लगने पर

के मन्त्रश मालूम होते हैं, किन्तु बहुत लम्बे और बहुत चौड़े। बीच में मनांवगी शक्ल की और सौसनी रंग की जो चीज निकलती है, वही कली होती है। प्रत्येक गुच्छे में सत्तर-अस्सी केले होते हैं। केला आकार-प्रकार में छोटी ककड़ी के समान होता है और छिलका आसानी से उतर आता है। गरिष्ठ होने के कारण केले अधिक नहीं खाये जा सकते। वह कई प्रकार का होता है। हर साल ठूँठ छोड़ कर उसका धड़ काट डालते हैं, यदि ऐसा न किया जाय तो वह न फले। साधारण मनुष्य जानते हैं कि कपूर इसी पेड़ में निकलता है, पर यथार्थ बात यह है कि वह इसी नाम का दूसरा पेड़ है, जिसका हाल आगे वर्णन किया जायगा। वं यह भी कहते हैं कि मोती केले से पैदा होता है, यह कथन भी मन्यता के प्रकाश में रहित है।

**महुआ**—इसका वृक्ष आम के मन्त्रश होता है। इसकी लकड़ी घर बनाने के काम आती है। इसके फूलों में शगव खाते हैं। फल का गिलोदा (गुलैदा, कलेंदी) भी कहते हैं।

बाहर नहीं निकलता, वरन् वह भीतर ही भीतर फूलता और फलता है। इसके पेड़ में एक ही फल लगता है, जिसके पकने पर पेड़ी पड़ जाती है। इसका फल इतना बड़ा होता है, कि खाने पर चार आदमियों का पेट भर जाता है। फिलिपाइन द्वीप में भी बहुत बड़े-बड़े केले होते हैं। कुछ केले बिजारू भी होते हैं, जिनकी फलियों में गोल-गोल बीज भर रहते हैं। इन्हें कठ-केला कहते हैं। आसाम और चटगाँव की ओर केला के जंगल भी हैं। कच्चे केले को सुखाकर लोग आटा भी बनाते हैं। जो, हलका होने के कारण औषधि के काम में आता है। पत्तों के डठलों के रेशों से चटाइयाँ बनाई जाती तथा कागज भी तैयार किया जाता है।

१—हिमालय की तराई तथा पंजाब की छोड़कर सारे भारतवर्ष में इसके जंगल हैं।

पंजाब में भी बागों में यह लगाया जाता है। चीन-पश्चिम वर्ष में इसका फलना-फलना आरम्भ होता और संकटों वर्ष तक इसमें फल-फूल आते रहते हैं। मटुण के फूल में शकर का आधा अंश होता है। इसके रस में राटियों पृष्ठा की तरह पकाई जा सकती है। मटुण के फूल को कुचकर आटे में मिलाकर जो राटियाँ बनाई जाती हैं, उन्हें “मटुआरी” और मटुण की मदिगा को संस्कृत में “माध्वी” तथा गैवारू-भाषा में “ठरा” कहते हैं। वैद्यक के अनुसार इसका फूल मयुर शीतल, धातुवर्द्धक तथा दाह, पित्त और वात-नाशक और हृदय-हितकारी गुण भारी होता है। इसका फल शीतल, वीर्यवर्द्धक, बलकारी, तथा वात, पित्त, दाह, तृषा, श्वास, क्षय-नाशक, छाल रक्त-पित्त शामक और वणशोधक तथा तेल कर, पित्त और दाह-नाशक होता है।

**मोलश्री—**(मोलश्री) फूलदार और फलदार वृक्षों में से है। उसका वृक्ष बड़ा और सुहावना होता है। फल नारंगी रंग का उन्नाय के सदृश होता है।

**तरकुल—**(ताड़) उसका फल और वृक्ष नारियल के फल और पेड़ के समान होता है। जब बिना पत्ती का डंठल निकल आता है तो उसका सिरा काटकर एक घड़ा बाँध देते हैं। उससे रस टपकता है। वरतन दिन में दो तीन बार भर जाता है। इस रस को ताड़ी कहते हैं। टटकी ताड़ी मीठी होती है, यदि वह कुछ देर रक्खी रहे तो खटमिट्टी हो जाती है और नशा करती है।

**पनियाला—**इसका फल जर्द-आल के सदृश होता है। वृक्ष नीबू के समान और पत्ते वृक्ष की तरह। फल कच्चेपन में हरा रहता है और पक जाने पर लाल।

**गुभी—**इसका पौधा बेलदार होता है। पत्ते और फल कुन्तार की तरह वृक्ष की जड़ से निकलते हैं।

**तर्री—**जड़ में लगती है और अधिकतर पहाड़ों में होती है। साल भर की बेल में चक्री के समान वह न्यूनाधिक एक मन की हाजाती है और दो साल में दो मन की। इसी प्रकार ज्यादा दिन रहने पर और अधिक भारी हाजाती है। उसके पत्त तगबूज के पत्तों के तुल्य होते हैं।

**पियार—**छोटे अंगूर के समान होता है जिगरी रंग का। वह खाने में स्वादिष्ट होता है। उसकी गुठली की मीठी, एक प्रकार का तिलहन है और

१—मूल ग्रंथ में "बर दरस्त-ओ गुल-आ मेवा बरगुजारन्द" पाठ है। जो अशुद्ध है। ब्लाक्मैन ने लिखा है कि उक्त शब्दों का अर्थ समझ में नहीं आता (Blachmann's translation p. 70 note)। पर पाठ अशुद्ध होते हुये भी मैं वाक्यार्थ का जो निष्कर्ष निकाल सका हूँ उसे ऊपर व्यक्त किया है।

२—ताड़-वृक्ष में चैत के महीने में फूल और वैशाख में फल लगते हैं, जो भादों में पक जाते हैं। फलों के अन्दर का गूदा खाने-योग्य होता है। तामिल-भाषा के 'ताल-विलास' नामक ग्रंथ में सात सौ एक प्रकार के ताड़ बतलाये गये हैं। यह, बर्मा, सिंहल,

सुमात्रा, जावा, थार फारम की खाड़ी में भी होता है। दक्षिण भारत में बहुत ताल-वन है। प्राचीन काल में ताल-पत्रों पर ग्रंथ लिखे जाते थे। ताड़ की पुलटिम पाड़े के लिए बहुत उपयोगी है। ताड़ का रस कफ, पित्त, दाह और शोथनाशक तथा कफ, वात, कुमि, कुष्ठ और रक्त-पित्त शामक माना जाता है। पदमे जफना (सिंहल) में ताड़ की लकड़ी दूर-देशों को भेजी जाती थी।

३—पियार का वृक्ष लगाया नहीं जाना, प्रायुतः स्वतः उत्पन्न होता है। भारतवर्ष में यह विशेषकर विंध्याक्षल पर्वत के चाला में उगता है। दक्षिण भारत और थोड़ी ऊँचाई

खान के काम में आती है। उसको चिरौजी कहते हैं। उसका पेड़ एक गजी होता है।

**नारियल**—इसको जौजे-हिन्दी भी कहते हैं। इसका वृक्ष लहारे के समान होता है, परन्तु उसमें ज्यादा बड़ा। इसकी लकड़ी मुहावने रंग की, और पत्ते बहुत बड़े होते हैं। यह मालभर बराबर फलता है, और तीन महीने में पक जाता है। कच्चे फल को, जब हरा होता है, तोड़ लेते हैं, और कुछ दिन तक मुरझित रखते हैं। उसमें एक प्याला दूध के तुल्य पदार्थ निकाल लेते हैं, वह स्वादिष्ट होता है। बहुधा उसमें मिसरी मिलाकर ग्रीष्म ऋतु में पीते हैं। जब पक जाता है, चने के रंग का हो जाता है, और दूध जम जाता है। जब उस पर तेल चुपड़ देते हैं, काला हो जाता है। वह मीठा और चिकना होता है। उसे ताम्बूल में टाँककर खाते हैं। जबान मुलायम और ताजी हो जाती है। उसके छिलके में, चमचे, प्याले और चिकारों के तृप्ते बनाते हैं। वह चार आँखों का, तीन आँखों का, दो आँखों का और एक आँख का होता है।

यह हिमालय में भी इसके वृक्ष पाये जाते हैं। इसके पेड़ और पत्ते देखने में मफोले महुए के पेड़ और पत्ता के समान मालूम होते हैं। वसन्त ऋतु में ग्राम के समान और आता और फिर फलमें के बराबर गोल फल लगते हैं। इन्हीं का पियार और अचार कहते हैं। इन फलों के अन्दर गुठली होती है। गुठली की ऊपरी तह गवाई जाती है। इसका गोद कहीं-कहीं माछी के काम में आता है। और छीपा इसका उपयोग करते हैं। छाल और फलों की वाणिज्य तैयार हो सकती है। लकड़ी यद्यपि कमजोर होती है तथापि उसके दरवाजे और खिलौने आदि बनाये जाते हैं।

१—नारियल भारतवर्ष में समुद्र-तट में लगाकर साँ कोस की दूरी तक होता है। इसमें अधिक दूरी पर यदि वह लगाया जाता है तो उसमें अच्छा फल नहीं आता। फल मफेद मफेद पतली-पतली मजरी के रूप में लगते हैं। फल गुच्छों में फलते हैं। वैद्यक में इसका फल शीतल, दुर्जर, वृण्य, पित्त और

दाह नाशक तथा ताजे फल का पानी रूखा, हृदय के लिए हितकारी, दीपक और वीर्यवर्द्धक माना गया है। इसके पके फल को डेढ़ महीने तक घर में रखते हैं। फिर घरान में हाथ-डेढ़ हाथ गहरें गड्ढे खोद कर उसे गाढ़ देते और राख तथा चार ऊपर में डाल देते हैं। कुछ समय पश्चात् उसमें कल्ले फूटते हैं। छे महीने या वर्ष भर में वह पौधा दूसरी जगह लगाया जा सकता है। भारतवर्ष में नारियल बँगाल, मद्रास और बम्बई में लगाये जाते हैं। महाभारत और मुश्रुत में नारियल का “नारिकेल” के नाम से उल्लेख हुआ है। कथा सरित्सागर में “नारिकेल-द्वीप” का भी जिक्र है। एक प्रकार का नारियल ‘दरियाई-नारियल’ कहलाता है। जो अफ्रीका और अमरीका में समुद्र के किनारे-किनारे होता है। इसकी गिरी सूखने पर पत्थर के समान कड़ी हो जाती है। गिरी बहुधा औषधि के काम में आती हैं, और कड़े ज़ोल का संन्यामियों का कमडल (जल-पात्र) बनता है।



प्रत्येक के पृथक्-पृथक् गुण वर्णन किये गये हैं ? किन्तु लोग, अंतिम (एकाक्ष) को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। एक प्रकार का नारियल विष-नाशक औषधि होता है। नारियल बारह मंर तक का तथा इसमें भी भागी होता है। उसके वृत्त की छाल की रस्सियाँ बनाते हैं और बड़े-बड़े जहाजों के रस्से भी उसी से तैयार होते हैं।

**पिडखजूर**—झुहारे को कहते हैं। उसका छोटा बिरवा जमीन से मिला रहता है। उसमें चार-पाँच सौ फल लगते हैं।

**सुप्पारी**—(सुपारी) फारसी में इसको फूल कहते हैं। उसका वृत्त मुहावना होता है और मंगे के समान बहुत लम्बा। तेज हवा में उसकी चांटी भूमि पर आ लगती है और फिर उठ खड़ी होती है। सुपारी कई प्रकार की होती है। कच्ची सुपारी का स्वाद कगीब-कगीब बादाम जैसा होता है। पकने पर वह कड़ो हो जाता है। उसे पान के साथ खाते हैं।

**सिघाड़ा**—यह तीन कोने का होता है। उसकी बेल तालाबों में होती है और फल पानी की सतह पर तैरता रहता है। उसे कच्चा और भून कर खाते हैं।

**सालिक**—तालाबों में जमीन के नीचे होता है, और पानी में घुम कर निकाल लाते हैं।

**पिडानू**—उसकी बेल लकड़ी पर दौड़ा देते हैं, वह ढंग तक बढ़ती है। उसके पत्ते पान के पत्तों के सदृश होते हैं। उसे जड़ खोद कर निकाल लेते हैं।

**कसेरू**—तालाबों में पैदा होता है। जब पानी सूख जाता है, जमीन से खोद कर निकाल लेते हैं। लोग उसे कच्चा खाते हैं और उबाल कर भी।

**सीयाली**—(एक कद है, जो) गाजर की शक्ल का, पर उससे अधिक लम्बा होता है। वह लता की जड़ में लगता है।

**नीबू**—वह मुर्गे के अंडे के सदृश होता है। एक प्रकार का नीबू कागजी कहलाता है। उसके छिलके और गूदे के बीच में हलका सफेद परदा होता है। फल रसीला और स्वादिष्ट होता है। एक प्रकार का नीबू सदा फलता है।

**अमलबेत**—नीबू के समान, बहुत खट्टा होता है। यदि उसमें फौलादी सुई चुभाओ, तो थोड़ी देर में वह (सुई) पानी हो जायगी। कौड़ी या शंख उसके रस में गल जाता है।

**करना**—मेव जैसा होता है। तीन साल के बाद उसमें फल लगता है। वह आरम्भ में हरा होता है तथा कड़वा और ग्वहापन लिए रहता है, फिर पीला पड़ने लगता है और कड़वा हो जाता है। पकने पर लाल और मीठा हो जाता है। यदि देर तक रक्खा रहता है तो फिर हरा हो जाता है। उसका पेड़ नीबू के समान, पत्ते कुछ अधिक चौड़े, कलियौ ग्राफी तीर के सदृश, फल सफेद और चार-चार पखडियों के होते हैं। उसका नुनहला पराग बहुत सुगंधित होता है। उससे सुगंधियों तैयार करते हैं। उसका वृत्तान्त-वर्णन मुक्त अनभिज्ञ की शक्ति में बाहर है, इसलिए मैं इतने ही कथन पर सन्तोष करता हूँ।

**ताम्बूल**—हर शाको में से है, परन्तु अनुभवो व्यक्ति उसको उत्तम फल मानते हैं, जैसा कि दिल्ली के मोर मुसगों का कथन है —

नादिरा धर्य चु गुने वाम्तों,

ग्वयतरी मेयय हिन्दोस्तों।<sup>१</sup>

इसके खाने में मुह सुगंधित और सभा सुगंधित हाजाती है। इसमें दोंतों की जड़ मजबूत होती है। तुर्वित खाने पर तुष्ट और तुष्ट गाने पर भूखा हो जाता है। पान कर प्रकार के पान हैं, मैं यहाँ पर कुछ का हाल लिखता हूँ। १, बिलहरी—यह सफेद और चमकीला पाना है। जीभ को गुरदग और कठोर नहीं बनाता, और पाना में सवने स्वादिष्ट होता है। जब उसे दल में तोड़ लेते हैं, तो एक महीने तक सुगन्धित ग्वाने पर सफेद हो जाता है, और यदि यत्न करे तो केवल बीस दिन में। २, काक्तेर—यह पान सफेद, चिन्तीदार और भग हुआ होता है। इसकी नसे कड़ी होती है। ज्यादा खाने पर जवान सख्त हो जाती है। ३, जैसवार—यह सफेद नहीं होता। लोग लाभ-प्राप्ति के लिए इसे दूसरे पानों के साथ मिलाकर बेचते हैं। ४, कपूरी—पील रंग का, कड़ा और नसदार होता है, परन्तु स्वादिष्ट और सुगंधित। ५, कपूरकान्त—हरे रंग का पीलापन लिये हुए होता है, और गोल मिर्च की तरह चरपरा। यह कपूर की तरह महकता है। दम पानों में अधिक नहीं खाये जा सकते। बनारस के अनिरिक्त और कही नहीं होता, और वहाँ भी हर जमीन में नहीं। ६, बँगला—चौड़ा, भग हुआ, कड़ा, रोयेदार, गर्म और चरपरा होता है।

१—ब्लाक्मैन के अनुवाद में यह वाक्य नहीं है। (देखिये ब्लाक्मैन का अनुवाद पृ० ७२)।

२—फुलवाही के फल के सदृश यह अनांवा पत्ता है, भारतवर्ष का यह अत्युत्तम फल है।

पान की खेतीवागी इस प्रकार होती है। चैत मास में नौरोज़ के आरम्भ में, करहंज पान को चार-पाँच अंगुल बेल सहित प्रथक् कर लेते हैं और बनाई हुई जमीन में इस प्रकार गाड़ते हैं कि पत्ता और मिरे की गाँठ ऊपर निकली रहे। पन्द्रह से बीस दिन में उस गाँठ से नई दूसरी बेल उग आती है। जब बेल में दूसरी गाँठ निकल आती है तो उसमें नया पत्ता अंकुरित होता है। सात महीने तक बेल और पत्ते उगते रहते हैं, उसके बाद उनका पैदा होना बन्द हो जाता है। हर बेल में तीस पान में अधिक नहीं होते। जितना पौधा बढ़ना जाता है, उसे नरकुलों पर चढ़ाते जाते हैं। बेल के ऊपर और आम-पाम लकड़ी और फूस से छा देते हैं और छाया में उसकी सेवा करते हैं। बरमात को छोड़कर उसे सदा सींचते रहते हैं। कभी-कभी दूध, तिल्ली का तेल और तिल की खली भी खेत में डालते हैं। पत्ते सात प्रकार में अधिक नहीं होते, और उनके नौ नाम हैं। वे क्रम-क्रम से पकते हैं। लोग तोड़ कर रखा करते और काम में लाते हैं। पहला करहंज—इस पान को बीज के लिए अलग कर

१—जिस दिन सूर्य का मेष राशि में प्रवेश होता है। तब वर्षारम्भ दिवस।

२—पान का नाम वेदो, सूत्र-ग्रंथों, वाल्मीकि रामायण और महाभारत में नहीं पाया जाता। हॉ, वैद्यक ग्रंथों और पुराणों में उसका उल्लेख मिलता है। विदेशी पर्यटकों ने भारतीयों को पान-खाने की आदत का जिक्र किया है। यह पञ्जाब और सीमाप्रान्त में नहीं होता। इन सूखों को छोड़कर शेष भारतवर्ष में सर्वत्र पैदा होता है। सिंहल, जावा और म्याम आदि उष्ण वायुजल वाले देशों में इसकी उपज अधिकता से होती है। जो लता पुरानी हो जाती है और जिसमें पत्ते निकलना बन्द हो जाते हैं, उसी की कलमें तैयार की जाती है, जो नई खेती के काम में आती है। उड़ीसा में और जगहों की अपेक्षा पुरानी बेल में अधिक समय तक नए पत्ते निकलते रहते हैं, इसलिए पान की खेती वहाँ सब से अधिक लाभदायक है। कहीं-कहीं बेल

भीटो पर न लगाकर किसी वृत्त पर—प्रायः सुपारी के पेड़ पर—घड़ा डेते हैं। अबुलफज़ल ने आईने-अकबरी के तीसरे ग्रंथ में मगही पानों का उल्लेख किया है। गया के मगही पान आज भी भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इसकी नमई बहुत मुलायम और पतली होती है, और बीड़ा मुह में खाते ही गल जाता है तथा अपूर्व आनन्द देता है। इसके बाद बंगला का नबर है, फिर महोबिआ आदि। वैद्यक के अनुसार पान उत्तेजक, दुर्गन्धि-नाशक, उष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, कफ और वात-नाशक, श्रम-हारक, दाँत और जीभ का शोधक है।

३—“पाया-पाया बिरसद-ओ जुदा साइता परवरिश नुमायन्द-ओ बकार बरन्द”—इस वाक्य का अनुवाद ब्लाकमैन के भाषान्तर में नहीं है (देखिये मूल आईने-अकबरी बंगाल एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित पृ० ८१ तथा ब्लाकमैन का अंगरेज़ी अनुवाद पृ० ७३)।

लेते हैं, और पेड़ी कहते हैं, तथा पत्ता गड़ौता कहलाता है। दूसरा नौती; तीसरा बहुती; चौथा खोव; पाचवा अर्धेड़ा या अधिनीड़ा; छठा अगहनियाँ इस लीवार भी कहते हैं, और सातवा करहज। गड़ौता को छोड़कर शेष हर प्रकार के पान को एक-एक माम पश्चात् बेल में तोड़ कर उसकी रक्षा करते हैं। कुछ लोग आखिरी किस्म के पान को ग्वान के लिए पृथक्-पृथक् कर लेते हैं और कोई-कोई उसे लता सहित रंग छोड़ते हैं, जो बीज के काम आता है। इस पान को वे बहुत बढ़िया ख्याल करते हैं। कुछ पारखी पेड़ी को अत्युत्तम मानते हैं, और उसका मूल्य अधिक लगाते हैं।

पहले ११००० पानों का गट्टा लहसा कहलाता था, पर आज-कल १४००० ताम्बूलों के गट्टे को उक्त नाम से पुकारते हैं। २०० पान के गुट्टे को ढोली कहते हैं, लहसा इन्हीं में बनता है। जाड़ में पानों को हर चौथ-पाचवें दिन के बाद उलटते-पलटते और हाथ में खुटकते हैं, और गमियां में प्रति दिन। पाँच से पच्चीस तक और कुछ लोग इनमें भी अधिक पान एक दूसरे पर रखकर तरह-तरह के तरीकों से बनाते चुनाते हैं। एक पान में कुछ सुपारी और कच्चा तथा दूसरे में चुना लगाकर लपेट देते हैं, कुछ कपूर और कस्तूरी भी डालते हैं, और रेशमादि से बाँध देते हैं, उसको बीड़ा कहते हैं। कभी-कभी पानों को विंगरा कर रक्षाबियों में चुन देते हैं, और उपयोग में लाते हैं। लोग उसमें एक प्रकार का भोजन भी तैयार करते हैं।

## आईन २६।

### रसोत्पत्ति ।

यत्न में व्यंजना (खरिश) का कुछ हाल वर्णन कर चुका, अब रसा'

१—मूलग्रंथ में “आईने पैदायश तश्म” पाठ है, जिसका अर्थ “स्वातोत्पत्ति का नियम” होता है। स्वाद के लिए वेद्यक ग्रंथों में ‘रस’ शब्द है, जिसका उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है—

पदार्थ मूल माने गये हैं। पुरुष चेतन है और प्रकृति जड़। जगत् प्रकृति का ही विकृत रूप है। प्रकृति में महत्त्व, महत्त्व से अहङ्कार, अहङ्कार में पंच तन्मायो अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का उत्पत्ति हुई है। इनको तन्मात्र इसलिए

साध्यदर्शन में पुरुष और प्रकृति दो

(स्वादो) की भिन्नता पर लिखता हूँ। उष्णता सूक्ष्म पदार्थ को तीक्ष्ण, स्थूल का कड़ुआ और मध्यम प्रकृति वाले (मानदिल) को खारी बनाती

कहते हैं कि ये विशुद्ध रहते हैं। इन में एक दूसरे का मेल नहीं रहता। इन्हीं से पंच स्थूल भूतों—आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी की क्रमशः उत्पत्ति हुई। पंच महाभूतों के एक-एक भूत में कई भूत सूक्ष्मरूप में मिले रहते हैं। जैसे आकाश तत्त्व तो अकेला है और उसका गुण शब्द है, किन्तु वायु में आकाश मिला है। इसलिए शब्द तो इसका गौण गुण है और स्पर्श मुख्य है इसी प्रकार अग्नि का मुख्य गुण रूप है, किन्तु आकाश और वायु के मिले जाने के कारण शब्द और स्पर्श गुण उसमें गौरवरूप में हैं। जल का मुख्य गुण रस है तथा उसमें शब्द, स्पर्श और रूप गुण गौरवरूप में हैं। पृथ्वी का मुख्य गुण गन्ध है किन्तु उसमें शब्द, स्पर्श रूप और रस गौरवरूप में हैं।

समर्ग, आनुकूल्य और मिश्रण के कारण एक भूत का अंश दूसरे में तो रहता ही है किन्तु अकृष्टता और अपवृष्टता के अनुसार वह विभिन्न रूप में निर्दिष्ट होता है। जलीय गुण में उत्पन्न रस का जब अन्य भूतों के गुणों के साथ सघात होता है तभी पदार्थ उत्पन्न होते हैं (जमाभाअग्नि जमाउत्तेज स्ववायवग्न्यनिलगोऽनिले। इत्योत्पत्त्ये क्रमाद् भूतैर्भूतुरादि रसादिव।—अष्टाङ्गहृदय सूत्र स्थान, अध्याय १०) इनकी उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है—

पृथ्वी और जल की अधिकता से मधुर	
अग्नि „ पृथ्वी „ अम्ल	
जल „ अग्नि „ लवण	
आकाश „ वायु „ तिक्त	
अग्नि „ वायु „ कटु	
पृथ्वी „ वायु „ कषाय	

भारतीय वैद्यक के अनुसार ये ही छे रस मुख्य हैं। परन्तु किसी-किसी के मतानुसार सब रस आग्नेय और सौम्य रस के अन्तर्गत हैं। जगत् में अग्नि और सोम के गुण मुख्य हैं, इसलिए मधुर, तिक्त और कषाय रस सौम्य रस के अन्तर्भूत माने जाते हैं, और कटु, अम्ल तथा लवण रस आग्नेय रस के। मधुर, अम्ल और लवण रस स्निग्ध एवं गुरु होते हैं, किन्तु कटु, तिक्त और कषाय रस रुचि अर्थात् स्निग्धता रहित और लघु होते हैं। सौम्य रसों में गीतलता और आग्नेय रसों में उष्णता का प्राबल्य रहता है।

जिस रस में परितोष, आह्लाद, शक्ति, जीवन-रक्षा तथा श्लेष्मा (कफ) की वृद्धि होती है, उसे मधुर रस कहते हैं। जिस रस के द्वारा दंत-हर्ष और रुचि उत्पन्न होता है वह अम्ल (खट्टा) रस है। जिस रस में जिह्वा के अग्रभाग में जलन तथा उद्वेग उत्पन्न होता, शिर चर्द पैदा होता और नाक से पानी गिरता है, वह कटु (चर्परा, कटुआ—जैय मोठि, मिर्च का स्वाद) रस कहलाता है। जिसके द्वारा मुख में निर्मलता, अन्न में रुचि तथा हर्ष उत्पन्न होता है, किन्तु जिसका निजी स्वाद अरुचिकर होता है (जैसे नीम और चिरायता आदि) उसे तिक्त रस कहते हैं। जिसके द्वारा वक्त्र (मुख) देश परिशुष्क, जीभ स्वमिन, कंठ वद्ध, हृदय-देश तक आकृष्ट और कुछ पीड़ित-सा मालूम होता है, उसे कषाय (कसेला, बकड़ा) रस कहते हैं। लवण रस प्रसिद्ध है।

है। शीतलता हलके को खट्टा, भागी को मुंह-जकड़ा और मातदिल को कसैला कर देती है। सकोचन-अवस्था (कब्ज) के प्रभाव में केवल स्थूल जिह्वा जकड़ती

मधुररस के सेवन से रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, ओज और शुक्र की वृद्धि होती है। यह दृष्टि, केश, वर्ण और बल-वर्द्धक है। घाव जुड़ जाता और रक्त शुद्ध हो जाता है। बाल, वृद्ध, युवा, ज्वररोग-ग्रस्त और दुर्बल के लिए हिनकारी है। यह नृणा, मृदा और दाह-शामक है। किन्तु इसके अधिक सेवन से कृमि, श्वाम, खासी, आलस्य बढ़ते और वमनेच्छा होती है। सेवन-कर्ता का स्वरभङ्ग होता, गला-गड, अर्जुन (अतारी) और ग्लोपद (क्रीत-पाव) जैसे रोग हो जाते तथा मूत्राणय और मलद्वार पर उपलेप हो जाता तथा नेत्रों में पीड़ा होती है। अम्लरस—जागरक और पाचक है। इसमें वायु शान्त और उमकी गति अनुलाम होती तथा कोष्ठ में जलन उत्पन्न होती है। यह क्लेदजनक और मुखप्रिय है। अधिक मात्रा में सेवन करने से दन्त हर्ष और लोम हर्ष होता है। इसी प्रकार, लवणरस—पाचक और मशोधक, कटुरस—पाचक, रंचक, अग्नि दीपक तथा मशोधक, निररस—रुचिकर और दीप्तिवर्द्धक, कपायरस—संग्राहक और मल, मूत्र तथा श्लेष्मा आदि का रोकने वाला होता है।

उपर्युक्त छे रसों के मिश्रण से छत्तीस प्रकार के रस पैदा होते हैं, जैसे—मधुराग्ल, मधुरतिक्त, अम्ललवण, अम्लकटु, लवणकटु, लवणतिक्त, कटुतिक्त और तिक्तकपाय आदि। न्याय दर्शन के अनुसार परमाणुरूप रस नित्य और रसना द्वारा गृहीत होने वाला रस अनित्य है (विशेष विवरण के लिए चरक, चक्रदत्त, वाग्भट और न्याय दर्शन देखिये)।

रसों के सम्बन्ध में डाक्टरी मत कुछ भिन्न है। प्रो० स्टार्लिंग ने ह्यूमन फिज़ियोलोजी (Pro Starling Principles of Human Physiology P 700 Second Ed., 1915) में लिखा है कि “प्रत्येक पदार्थ का स्वाद उसके रासायनिक अवयवों के संगठन पर निर्भर है, जैसे खट्टा हाइड्रोजेनाइन्स (Hions) पर और चार विशिष्ट आक्सीजन-हाइड्रोजेनाइन्स (O Hions) पर। सव अलफा-अमाइनो-एसिडो (α-amino acid-) का स्वाद मधुर होता है। पालीपेप्टाइड्स (Polypeptides) जो कि एसामिनो-एसिडो से बनते हैं तथा पेप्टोन्स (Peptones) जो कि प्रोटीनों (Proteins) के अवयवों में निर्मित होते हैं, कड़वे होते हैं। अन्काहले और शुगरों अधिकतर मीठी होती हैं किन्तु इनमें जो धातु पदार्थ प्रकृत हैं, वे कड़वे होते हैं। हम लोग अभी तक कोई ऐमा केमिकल-ला (रासायनिक-नियम) नहीं जान सके हैं, जो यह तलता हो कि किसी पदार्थ का असुक स्वाद क्या और क्यों होना चाहिये।” इस विषय में अन्य विशेषज्ञों का भी प्रायः ऐसा ही मत है। प्रो० टैलीवर्टन की फिज़ियोलोजी के अनुसार डाक्टरी मत में चार रस मुख्य माने जाते हैं—मधुर, कटु, अम्ल और लवण (Sweet, Bitter, Acid, Saline)। मधुर रस का ज्ञान रसना के अग्र भाग से, अम्ल (खट्टा) का जिह्वा के किनारों से, और कटु या कड़वा का जीभ के पिछले भाग से होता है। रसनेन्द्रिय इतनी सूक्ष्म है कि वह गंधक के तेज़ाब के एक भाग को पानी के १००० भागों में से पृथक् कर देती है। भारतीय छुप गुडहर (Gnema Sylvestre)

है किन्तु कसैलेपन (अफूसत) में अन्तर भी । माध्यमिक ताप पहले (मूदम) को चिकना, दूसरे (स्थूल) का मधुर और अन्तिम (माध्यमिक) को स्वाद रहित बनाता है । प्राकृतिक स्वाद इनसे अधिक नहीं है । कुछ लाग मौलिक स्वादों के चार भेद करते हैं, अर्थात्—मिठास, कड़वास, खटास और नमकीनी । इनके मिलने पर जा स्वाद उत्पन्न होते हैं, वे अग्रणीत है । कुछ के नाम इस प्रकार हैं—जैसे, बशाअत कड़वास और तीखेपन के मिश्रण को कहते हैं तथा जऊला नमकीनी और कड़वास के मिश्रण को ।

## आईन ३० ।

### सुगंधालय ।

सम्राट सुगंधियों से प्रेम करता है, और इसका ईश्वरोपासना का साधन समझता है । अवर और ऊद (अगर) से तथा उन सुगंधियों से जा कि सम्राट

की पत्तियों चयाने के पश्चात् मधुर और कड़वे रस का स्वाद नहीं रहता है, किन्तु खटा और नमकीन स्वाद बना रहता है (Pro Halliburton Hand Book of Phy-tology P 709-10, Fifth Edition, 1903) । प्रो० स्टुअर्ट ने अपने प्राणि-धर्म-विद्या-विषयक ग्रन्थ (Pro Stewart Manual of Phy-tology, P 966-67 6th Ed 1910) में लिखा है—“जीभ का अग्रभाग, किनारे, जीभ की जड़ कोमल तालु के निकटवर्ती भाग और तालु का मध्यस्थान वास्तव में रसेन्द्रिय के अन्तर्गत हैं । किन्तु रसों के ज्ञान-प्रदायक क्षेत्र की निश्चित सीमाएँ अभी निर्धारित नहीं हो सकी हैं । इस विषय में विद्वानों में मतभेद है ।” उपर्युक्त मुख्य चार रस मानते हुये भी स्टुअर्ट का कहना है कि शेष अनेक गोण स्वाद हैं, जो इन्हीं के मिश्रणों से बनते हैं ।

हेलीवर्टन के विरुद्ध स्टुअर्ट के मतों के अनुसार मिठास और खटास दोनों ही एक ही तन्त्र की नोक से अन्तर्गत होना हैं । स्टुअर्ट का कथन है कि यद्यपि उक्त चार ही रस प्रधान हैं तथापि कुछ प्रकार जगम्बर और धानु संनधी (alkaline and acetate) का रस और मानते हैं ।

१—देशीयिक दर्शन के अनुसार ( व्यवस्थित पृथिव्या गन्ध ) गन्ध गुण पृथ्वी का है । परन्तु अनेक आधुनिक विज्ञानवेत्ता जल में भी गंध मानते हैं । गंध घ्राण-न्द्रिय का विषय है । गंध के साधारणतया दो भेद हैं—एक सुगन्ध और दूसरा दुर्गन्ध । किन्तु “भारत” में इसके दस भेद लिखे हैं—इष्ट, अनिष्ट मधुर, असल कटु, निर्हारी संहत स्निग्ध, रुक्ष और विशद (दृष्टश्चा-निष्टगंधश्च मधुरोऽम्लः कटुस्तथा, निर्हारी

ने आविष्कृत की है एवं उन मिश्रणों से जो कि प्राचीन-विधि से तैयार किये जाते हैं, श्रेष्ठ गज-परिपक्व सदा सुरक्षित रखा करती है। सोने और चाँदी के विभिन्न आकृतियों के बने हुये उप-पात्रों में सर्वदा धूप सुलगाई जाती है। सुगन्धित पुष्प देगा सचय किये जाते हैं। फलता में तेल बनाते हैं और उस शिग के बालों तथा शरीर पर मलते हैं। बहुत से मन-मोहक एकत्र किये हुए सम्मिश्रणों में से कुछ का हाल लिख कर विषय को मनोरंजक बनाता हूँ।

१. सन्तोष—१, तो २ जवाहर, १ ताला चोवा, २ माशा चमेली का तेल और २ जीणा गुलाब मिलाना है। शरीर पर मलने में आनन्द बढ़ाना है।

सबत, मिश्रणों को दिनाः एवं च ) । हृष्ट—जैसी कस्तूरी आदि की, अनिष्ट—जैसी मुँदे आदि की, राधुर—जैसी मधु और फूल आदि की, अमृत—जैसी आम और इमली आदि की, कटु—जैसी मिर्च आदि की, निर्दारा—जैसी नीस आदि की, महान—जैसी लाल च की, किंगन—जैसी घाँ का, हृष्ट—जैसी लाल च और राई आदि की, विजय—जैसी चावल आदि की।

सारवर्ष में सरावियों का पचार बहुत प्राचीन काल से है। कन्नौज, जानपुर, गार्जीपुर आदि प्रांतों में अनेक स्थानों से सुगन्धि द्रव्यों की उत्पत्ति के लिए अनेक प्रक्रियाएँ की जाती रही हैं। प्यार उ-का देश-विदेश में प्रयोग होता रहा है। आज-कल भी इस देश में बहुत उत्तम-उत्तम दूध, तेल, दूध, अगरबत्ती, साबुन तथा अन्य सुगन्धित पदार्थ तैयार होते हैं। सुगन्धियों की खपत इस देश में इतनी अधिक है कि नाना प्रकार की सुगन्धियों जैसे सेंडलवुड आदि पर्याप्त परिमाण में बाहर से आती है।

विदेशों में इसमादकलोपीनिया विद्यानिका (Encyclopaedia Britannica, Vol. 9, 11-13, 1929) के अनुसार इंग्लैण्ड,

यूनाइटेड स्टेट्स, फ्रान्स और हालैण्ड में फूलों की उत्पत्ति बहुत ज्यादा होती है। फ्रान्स के अनेक भागों में और विशेषकर पैरिस के आस-पास गुलाब और काटदार फूलों के लिए कोच-घर (Glass houses) बनाये गये हैं। हालैण्ड में नरगिस-शहता, पीला नरगिस, लाला और सबुल (narcissus, daffodils, tulips and hyacinths) के रंगों की वसन्त ऋतु में ऐसी आग लगती है कि समार में वैसा दृश्य कहीं नहीं दिखलाई पड़ता। यहाँ के खेत समार की बीज-पुतियों के मुख्य उत्पादक स्थान हैं, और प्रतिवर्ष बहुत बड़े परिमाण में सभी भागों को उनका निर्यात होता है फूल का खेती का क्षेत्रफल १२००० एकड़ है। और यह एम्पर्टम तथा लेडेन के बीच में स्थित है। काटदार फूलों की उत्पत्ति के लिए यहाँ भी काच-घरों में बीज-पुतिया लगाई जाती है। यहाँ से फूल बहुत बड़ी तोल में विशेषकर लाला इंग्लैण्ड, जर्मनी और फ्रान्स को भेजा जाता है। यूनाइटेड स्टेट्स में पुष्प-कृषि की बड़ी उन्नति हुई है, किन्तु कनाडा में उससे कम।”

१—इन पदार्थों का वर्णन आगे इसी आर्द्धन में है।



२, अरगजा— $\frac{३}{४}$  सेर चन्दन, २ तोला इक्सीर और मेद, ३ तोला चोवा,  
१ तोला वनफशा की जड़, १ तोला गेहला ( एक जड़ी की जड़ ),  $\frac{१}{२}$  माशा कपूर और  
११ शीशे गुलाब इस्तेमाल करते हैं। गरमी में उसे बदन पर मलते हैं।

३, गुलकामा—१ तोला अवर अशहब,  $\frac{१}{२}$  तोला लादन, २ तोला बढिया  
कस्तूरी, ४ ता० बढिया अगर, ८ ता० इक्सीर-अवीर<sup>१</sup>, इन सब को चूर्ण करके चीनी की  
थालियों में रखते हैं। एक सेर गुलाब के फूलों का रस निकालकर उसमें मिला देते हैं  
और मूर्य की धूप में सुखाने हैं। मायझाल, उसको गुलाब और अर्कबहार ( नारंगी  
के फूलों का अर्क ) में तर करके समाकर पत्थर पर पीसते हैं। जब इसी प्रकार  
दस दिन बीत जाते हैं तो बहारनारज ( नारंगी के फूलों ) का रस मिलाकर उसे  
सुखा लेते हैं। फिर अगले बीस दिनों में थोड़ा-थोड़ा स्याह रैहों का रस—जिमको  
नाजबूप्प्याह<sup>२</sup> भी कहते हैं—मिलाते हैं। ३ श्रमण का कुछ अश अरगजा में भी  
मिलाया जा है।

४, रूहअफजा— $\frac{५}{४}$  सेर अगर,  $\frac{१}{४}$  सेर चन्दन,  $\frac{१}{४}$  सेर लादन, इक्सीर<sup>४</sup>,  
लोबान और धूप ( एक जड़ है, जो काश्मीर में लाई जाती है ) में गे हर एक  
 $\frac{३}{२}$  तोला, २० तोला वनफशा की जड़ १० तोला छरीला। इन सब औषधियों को  
कूटकर कवाम<sup>५</sup> बनाकर मिलाने हैं। उसमें ४ शीशे गुलाब डालते हैं। फिर  
टिकियों बनाते और धूपगानियों में जलाते हैं। बहुत बढिया गन्ध आती है।

५, उबटना—एक प्रकार का सुगन्धित साबुन है।  $\frac{२}{४}$  सेर लादन  $\frac{१}{२}$   
सेर ५ दाम अगर, उतना ही बहारनारज,  $\frac{१}{२}$  सेर उसी का छिलका, १ सेर

१—बनाने की विधि इसी आईन में  
आगे है। देखिये नं० १२।

२—पत्थर जो सफेद और मुलायम  
होता है।

३—श्यामा तुलसी।

४—इक्सीर या अक्सीर का अर्थ रसा-  
यन या अचूक-औषधि है। लुगाते-कबीर में  
इक्सीर का अर्थ छरीला लिखा हुआ है।  
तिब्बिया-कालेज दिल्ली के प्रिन्सिपल ने भी  
मेरे पत्रों के उत्तर में यही अर्थ लिख भेजा  
है। परन्तु यहाँ पर छरीला से अभिप्राय

नहीं है, क्योंकि रूहअफजा के नुस्खे में  
छरीला और इक्सीर दोनों पड़ते हैं।  
उपर्युक्त आशय के जो पत्र अन्य महोदयों  
को लिखे गये हैं, उनके उत्तर अभी तक  
नहीं मिले हैं। इक्सीर शब्द की काफी  
छानबीन की गई है किन्तु किसी भी हकीम  
से सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। किसी  
कोष के अवलोकन से भी अभीष्ट सिद्ध नहीं  
हुआ।

५—पकाते-पकाते शहद की तरह गाढ़ा  
किया हुआ रस।

१० दाम चन्दन ; १ सेर ५ दाम संवुलुत्तीब, जिसे हिन्दी भाषा में छड़ ( बालछड़ ) कहते हैं, १ सेर ५ दाम छरीला, ३८<sup>१</sup>/<sub>२</sub> तोला कम्तूरी, <sup>१</sup>/<sub>२</sub> सेर ४ तोला पाची<sup>१</sup> के पत्ते, ३६ तोला सेब, ११ तोला मुअद जिमें हिन्दी में मोथा ( नागर मोथा ) कहते हैं, ५ दाम वनफ़शा, १ तोला २ माशा धूप, <sup>१</sup>/<sub>२</sub> तोला इकनकी ( विशेष प्रकार की एक घास है । ) । उतना ही जुरम्बाद जिमें कचूर कहते हैं, १ तोला २ माशा लोबान, १०६ शीशा गुलाब, और ५ शीशा अर्कवहाग लेते हैं । सब को कूट-छान कर मद-मंद आँच में गुलाब में पकाते हैं । जब तगी कम हो जाती है, उसे उतार कर सुखा लेते हैं ।

६, अक्षीरमाया—अगर ४ दाम, चन्दन २ दाम, वनफ़शे की जड़ १ दाम बालछड़ ३<sup>१</sup>/<sub>२</sub> दाम<sup>२</sup>, डालक ३ दाम, खताई मुस्क ४ तोला, लादन २<sup>१</sup>/<sub>२</sub> दाम, बहार नारज ७<sup>१</sup>/<sub>२</sub> दाम । सबको कूट-छान कर १० शीशे गुलाब में मद-मद आँच में पकाकर छाया में सुखा लेते हैं ।

७, किशना<sup>३</sup>—२४ तोला अगर, छे-छे<sup>४</sup> तोला लादन, लोबान और चन्दन चार-चार<sup>५</sup> तोला इक्कीर और धूप, दो-दो तोला वनफ़शा की जड़ और कम्तूरी, १ तोला छरीला इन सब को ५० तोला मिर्ची में मिलाकर दो शीशे गुलाब में मध्यम आँच में पकाकर टिकिया बाध लेते हैं । इनका ( आग में ) जलाने पर सुगंध फैलती है और मन आह्लादित होता है ।

१—मूल आईन में 'पाचा' और 'माचा' पाठ है, जो अशुद्ध है । वास्तव में यह शब्द पाची है, जिसे पची, मर्कतपत्री और हरितपत्रिका भी कहते हैं । यह एक लता है, जो वैद्यक के अनुसार कटु, तिक्त, कषाय और उष्ण है, तथा वातविकार, चर्मरोग और फोड़े-फुमियों के लिए उपकारक है ( शब्दसागर ) ।

२—३ दाम—ब्लॉकमैन ( Blochmann's trans P 71 ) । किन्तु मूल ग्रन्थ में "सेध्वन्नीम" अर्थात् ३<sup>१</sup>/<sub>२</sub> पाठ है ।

३—आलूबुखारा, शकुत्तालू, जर्दआलू तथा ऐंसे ही फल, जिनको, गुठलियां निकालकर, सुखा लेते हैं ; किन्तु यहां पर सुगंधित मिश्रण में अभिप्राय है ।

४—६<sup>१</sup>/<sub>२</sub> तोला—ब्लॉकमैन, ( Blochmann's trans, P, 71 ) । किन्तु मूल आईन में "शश शश" अर्थात् छे छे पाठ है ।

५—२ तोला—ब्लॉकमैन ( ibid, P 71 ) मूल आईन में "चहार चहार" अर्थात् चार चार पाठ है ।

८, बुखर—१ सेर अगर ; १ सेर चन्दन ;  $\frac{1}{4}$  सेर लादन , २ तोला कस्तूरी ; ५ तोला इक्सीर , २ सेर मिर्ची , और १ शीशा गुलाब डालकर धीमी आंच देकर मिला लेते हैं ।

९, फतीला—५ सेर अगर , ७२ तोला चन्दन , २५ तोला इक्सीर , २५ तोला लादन , २५ तोला वनफुशा , १० तोला लोबान , ३ तोला मिर्ची , सब को कूट-छानकर २ शीशे गुलाब में बत्तिया बना लेते हैं ।

१०, बारजात—१ सेर अगर , ५ तोला लादन , २ तोला कस्तूरी , २ तोला चन्दन , १ तोला लोबान ,  $\frac{1}{2}$  तोला कपूर । चोंच की तरह चुआ लेते हैं ।

११, अबीरइक्सीर— $\frac{3}{4}$  सेर चन्दन , २६ तोला इक्सीर , २ तोला ८ माशा कस्तूरी । पीस कर छाया में सुखा लेते और इस्नेमाल करते हैं ।

१२, गमूल—३५ तोला चन्दन , १७ तोला कतूल , १ तोला कस्तूरी , १ तोला चाआ २ माशा कपूर , २ माशा मीठ , २ शीशा गुलाब के साथ मिलाकर बना लेते हैं ।

### सुगंधियों की तालिका ।

नाम	तोल	मूल्य	नाम	तोल	मूल्य
अम्बर अशहव प्रति तोल	१ से ३ मोहर तक		भीमसेनी कपूर प्रति तोल	३ रु० से २ मो० तक	
जवाद	"	२ रु० से १ रु० तक	मीद	"	१ " से ३ रु० "
कस्तूरी	"	१ " ४२ "	केशर	प्रति सेर	१२ " २२ "
अगर	प्रति सेर	२ रु० से ५ मो० तक	कमदी केशर	"	१ " ३ मो० तक
चाआ	प्रति तोल	१ " १ रु० तक	काश्मीरी केशर	"	८ " १२ रु० तक
गोरा	"	३ " ५ "	चन्दन	प्रति मन	३२ " ५५ "

१, २—२० तोला ब्लाकमैन (ibid, P 74) । आईन में "बीन्स-ओ पंज" अर्थात् २५ पाठ है ।

३—५ तोला ब्लाकमैन (ibid, P 75) । आईन में "बीन्स-ओ पंज" अर्थात् २५ पाठ है ।

४—वह वस्तु जिससे शिर इत्यादि धोयें ।  
५—किसी-किसी प्रति में कैवल पाठ है ।

६—१ मोहर ब्लाकमैन ( Bloch mann's trans P 75 ) । आईन में 'पंज' अर्थात् पांच पाठ है ।

## सुगंधियों की तालिका (शेषांश)

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
अर्क-फितना	प्रतिशीशा	१ रु० से ३ रु० तक	अन्य लोबान	प्रतिमेर	१ रु० से २ रु० तक
अर्क-बेदमुष्क	"	१ " ४ "	छड़	"	१ " १ " ४ " २ "
गुलाब	"	२ " १ "	कस्तूरी-नाभि	"	२ मो० से १२ मो० तक
अर्क-बहार	"	१ " ५ "	कलम्बक <sup>३</sup>	प्रतिमन	१० रु० से ४० रु० तक
अर्क-चमेली	"	१ " ४ "	शिलारम	प्रतिमेर	३ रु० से ४ रु० तक
वनफुशा की जड़	प्रतिसेर	१ " १ "	अम्बर-लादन	"	११ रु० से ४ रु० तक
नख	"	१ " २ "	चीना-कपूर	"	१ रु० से २ रु० तक
माजपत्र <sup>१</sup>	"	१ " १ "	छरीला	"	३ मो० से ४ मो० तक
गुजरात से लाये जाने हैं	"	२ " १ "	गंहला	"	"
सुगंधकोकिला	"	१० " १३ "	मुअद	"	"
लोबान (सर-गर्द का)	प्रति तो०	१ " ३ "	(नागर मोथा)	"	"
			इकनकी	"	"
			जुरबाड (कचूर)	"	"

## सुगंधित पुष्प ।

नाम	रंग	ऋतु	नाम	रंग	ऋतु
मंवती	सफेद लिये हुए	गाल भर फूलता है, तथा के अंत में बहुत गंध ।	केतकी	परा तर्पित तथा श्री अरु का मध्य	ग्रीष्म
चमेली	सफेद, पीली और नीली	वर्षा में और कुछ जाड़े में भी ।	केवडा	"	शिशिर ऋतु में
रायबेल	श्वेत चद्रवर्ण	ग्रीष्म के अंत और वर्षा के आरम्भ में ।	चलता	"	"
मोगरा	पीला	ग्रीष्म ।	गुलाल	"	वसन्त
चम्पा	"	सदा खिलता है, विशेष कर उम्र समय अब गुप्त मोन और मेष राशि में होता है ।	तमचीहगुलाल	सफेद	शरद
			सिगार हार	"	ग्रीष्म

१—किसी-किसी प्रांत में बाज और ताज पाठ हैं ।

२—इस स्थान का पता नहीं चलता ।

३—किसी-किसी मूल ग्रन्थ में कलबंक, कलबनक, कलीनक और कलनबक पाठ हैं ।

मि० ब्लाक्मैन ने (पृ० १००) पाठ माना है ।

## सुगंधित पुष्प (शेषांश)

नाम	रंग	ऋतु	नाम	रंग	ऋतु
मोलश्री	सफेदी लिये हुये	वर्षा	नरगिस	सफेद	वसन्त
कूड़ा	सफेद	ग्रीष्म	गुल-बनफशा	बनफशाई	ग्रीष्म
पाडल	लाली लिए नीला	वसन्त	गुलेकरना	सफेद	वसन्त
जूही	सफेद और पीली	वर्षा	कपूर बेल		
	चमेली के समान				
निबारी	कुछ सफेदी लिये हुये	वसन्त	गुले-जाफरां	बनफशाई	खरीफ

## सुहावने सुमन ।

नाम	रंग	ऋतु	नाम	रंग	ऋतु
सूर्यमुखी	पीला	—	श्रीखंडी	अन्दर सफेद	वसन्त
केवल (कमल)	सफेद, और नीला भी होता है ।	वर्षा		पीलापन लिये हुये	
जाफरी	पीला, सुनहला, नारंगी और काढ़ा ।	वसन्त		और बाहर सुर्खी	
गुड़हल	पंखड़ियों का रंग विभिन्न प्रकार का होता है, जैसे लाल, पीला, नारंगी और सफेद ।	वर्षा	गुले-हिना	मायल ।	
रत्नमजनी	लाल आग की तरह चमेली से बहुत छोटा ।	सर्वदा	दुपहरिया	लाल अग्नि-वर्ण बारहमासी और सफेद ।	
केसू (टेम्)	—	ग्रीष्म	भुवनचपा	आड़ू जैसा	
कनेर	लाल और सफेद		मुदर्शन	पीला, कुमुदिनी	वर्षा
कदम	बाहर हरा, बीच में पीला, अंदर के रंग सफेद ।	वसन्त		के फूल के सदृश, पर उससे छोटा ।	
नागकेसर		"	मेबल	गहरा लाल	वसन्त
सुरपत	सफेद, बीच में लाल और पीली धारियाँ ।	वर्षा	रत्नमाला	पीला	"
			मोनजर्द	पीला	"
			मालती	..	
			कर्णफल	सुनहला पीला	
			करील	.	वसन्त

१—ब्लॉकमैन (Blochmann's trans. P. 77) के अनुवाद में ऋतु नहीं लिखी है, किन्तु आईन में है ।

### सुहावने सुमन (शेषांश)

नाम	रंग	ऋतु	नाम	रंग	ऋतु
जैत	अन्दर पीला, बाहर लाल, काला-पन लिए हुए ।	वर्षा	करौदा का फूल	सफेद, चमेली के फूल से छोटा ।	वर्षा
चम्पला	सफेद नीवृ के फूल की तरह ।	वसन्त	धनन्तर	कुमुदिनी के फूल की तरह ।	वर्षा
लाही	..	मीन राशि मे खिलता है	कँगलाई	दो प्रकार का, लाल और पीला ।	..
			मिरस	हरा पीलापन लिये हुए रेशदार ।	वसन्त
			सन	पीला	वर्षा

### सुगंधियों की उत्पत्ति ।

१, अम्बर<sup>१</sup>—कुछ लोग कहते हैं कि अम्बर समुद्र की तलहटी में उगता है, जल-जन्तु उसे खाते और तृप्त होने पर उगल देते हैं । अनेक व्यक्तियों का कथन है कि मछली उसे खानी और मर जाती है, अम्बर उसके पेट में निकाल लेते हैं । कुछ लोगों के मतानुसार वह दरियाई गाय का गोबर है, जिसमें सारा कहते हैं । अनेक समुदाय उसे समुद्र-फेन समझते हैं । अनेक व्यक्तियों का मत है कि यह टापुओं के पर्वतों में टपकता है । कई जन-समूह इसे दरियाई पेड़ का गाढ़ बतलाते हैं । कुछ व्यक्ति उसे मोम मानते हैं । आर्सेन-अकवरी के लेखक (अनुत्तरज्जल) का विचार भी लगभग ऐसा ही है । लोग कहते हैं कि कुछ पहाड़ों में इतना ज्यादा शहद पैदा होता है कि बहन लगना है और समुद्र में जा गिरता है ।

१—यह हैल मछली की अंतर्द्वियों में जमी हुई एक चीज़ है, जो भारतवर्ष अफ्रीका और ब्रेज़िल के समुद्री किनारों पर बहती हुई पाई जाती है । हैल का शिकार इमी के लिए होता है । अंबर बहुत हलका और शीघ्र जलने वाला होता है तथा आंच दिखाते रहने से बिल्कुल भाप होकर उड़

जाता है । इस का व्यवहार औषधियों में होने के कारण यह नीकोबार तथा भारत-समुद्र के और-और टापुओं में आता है । प्राचीन काल में अरब यूनानी और रोमन लोग इसे भारतवर्ष से ले जाते थे । जहाँ-गीर ने इस से राज-सिंहासन का सुगंधित किया जाना लिखा है (शब्द सागर) ।

मोम ऊपर तैरने लगता है और गर्मी से सूख जाता है । यत मधु-मक्खियों का आहार सुगंधित जड़ों वृद्धियाँ हैं, इस कारण अंबर भी सुगंधित हो जाता है, कुछ मधु-मक्खियाँ उस में पाई भी गई हैं । पूरे-मेना का विश्वास है कि समुद्र की तलहटी में एक सोता उमड़ता है, अंबर उसमें चूता है, और लहर उस किनारे पर ठेल देती है । टटका अंबर गीला होता है, सूर्य की धूप से सूख जाता है और उसके तरह-तरह के रंग हो जाते हैं । वह कम धूप में सफेद, अधिक से काला और मध्यम से पिस्टई तथा पीले रंग का हो जाता है । सबसे अच्छा अशहब होता है । वह बहुत चिकना और पर्तदार होता है । जब उसे ताड़ते हैं, तो पीलापन लिये हुये सफेद निकल आता है । वह जितना ही ज्यादा सफेद, हलका और मुलायम होता है, उतना ही अधिक उत्तम होता है । इसमें उतरकर पिस्टई रंग का, और इससे भी घटकर पीले रंग वाला, जिसे खशखाशी कहते हैं, होता है । सब में निकृष्ट काले रंग का होता है, जो अधिक दहनशील होने के कारण भस्म हो जाता है । लोभी सौदागर उसमें मोम, मदल, लादन आदि मिला देते हैं, जिसको प्रत्येक व्यक्ति नहीं पहचान सकता ।

२, मन्दल<sup>२</sup>—एक प्रकार का अंबर है, जिसका लोग मरी हुई मछली के उदर में निकालते हैं । उसमें सुगंध कम होती है ।

१—ब्लकमैन (Blochmann's trans-  
P 78) ने इस वाक्य (व अज्ञ कमतर सफेद-  
आ अज्ञ बेष्टर मियाह-ओ अज्ञ मियाना  
क्रिस्तकी-ओ जर्द—मूल आईन पृ० ६२)  
का अनुवाद “सफेद सर्वोत्तम, और काला  
सब में निकृष्ट है तथा मध्यवर्ती पीला और  
पिस्टई रंग का होता है” किया है । यह  
शुद्ध नहीं मालूम होता, क्योंकि एक तो यह  
अर्थ शब्दों में नहीं मिलता है दूसरे ‘वाव’  
से आरंभ होने के कारण यह वाक्य पहले  
वाक्य का अनुपगम है । पहले में अंबर के  
रंगों का वर्णन है, जो धूप से परिवर्तित  
होते हैं । उन्हीं का इसमें विवरण है ।

२—संस्कृत में मंडल व्याघ्रनख या

नख को कहते हैं । यह मोपा या घोघ की  
जाति के एक जंतु के मुँह का चकन होता  
है । इसकी शक्ल नाबून, घाटे के खुर या  
हाथी के कान की नरह की या कभी-कभी  
बिल्कुल गोल होती है । इसका रंग नीला,  
सफेद तथा और कई प्रकार का होता है ।  
परन्तु छोटे आकार वाले और सफेद रंग के  
नख को लोग अच्छा समझते हैं । इसे  
जलाने से दुर्गन्ध आती है, किन्तु तेल में  
टालने में सुगन्ध । नवलकिशोरी आईने-  
अकशरी के हाशिये पर लिखा है कि “मंदल  
कच्चा ऊद (अगर) है और कोई-कोई  
कहते हैं कि हिन्दुस्तान में एक नगर है,  
जिसमें ऊद बहुत होता है ।”

३, लादन—भी अंबर कहलाता है। इसकी उत्पत्ति एक वृक्ष से है, जो किवरस<sup>२</sup> और कीसूस<sup>३</sup> अथवा क्रिन्तूस की सीमाओं में पैदा होता है। उसके पत्तों पर गीला रस स्थिर हो जाता है, जब बकरियाँ चरती हुई उमके पास जाती हैं तो उनकी जघाओं के बाल और खुद उससे सोद जाते हैं और वह सूख जाता है। बालों में मौद हुए लादन को लोग बढ़िया मानते हैं, वह हरापन लिए होता है और उममें बड़ी अच्छी गंध आती है। खुदों में भरे हुए लादन को बहुत निकृष्ट समझते हैं। कभी-कभी लोग उसके वृक्ष में रस्सियाँ बांध देते हैं, जो लादन

१—एक सुगन्धित पदार्थ है, जो दुशाब ( दो-एक रात रखकर खटा किया हुआ अमुर या छुहारे का रस ) के समान काला और पतला होता है। इसे अथग असली भी कहते हैं ( बुरहानकाने ) ।

२—किवरस (Cyprus) मेडीटेरेनियन-सागर में एक द्वीप है। इसकी राजधानी निकोमिया (Nicomedia) है। इसका क्षेत्रफल ३१८४ वर्ग मील है। गेहूँ, जौ, दाल की जिनमें जई, जैतून, कपास, पाट, किशमिश, लोकस्टर्न, तथा अन्य फल पैदा होते हैं। भेड़ बकरी एवं दूसरे पशु पाले जाते हैं। रेशेदार न जलने वाला एक खनिज पदार्थ, खरिया मिट्टी अमुर, सगममर, आतशी पत्थर तथा नमक तैयार होते हैं। प्राचीन फोइनोशियन और रूमियों की खानें तांबे के लिए खोदी जाती हैं। जंगल सुरक्षित हैं। सटर्न और रत्न हैं।

पहले फोइनोशियनग ने इसे अपना उप-निवेश बनाया था। फिर यह ग्रीकों के हाथ में चला गया। यूनानियों ने इसको पफोस (Paphos) के एक मन्दिर सहित एफ्रोडाइट (Aphrodite) को समर्पित कर दिया। फिर यह पारी-पारी में असीरियों, फारसवालों, निग्रियों, रूमियों और बाइज़ैण्टाइनियों के अधिकार में रहा।

१८७८ ई० में तुर्की के मुल्तान ने एक परिषद् में शासन-व्यवस्था के लिए इसे ग्रेट-ब्रिटेन को दे दिया। १९१४ ई० में यूरोपीय महा-समर में तुर्की के भाग लेने पर उसी वर्ष २ नवम्बर को एक राजकीय घोषणा द्वारा, यह टापू ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। १९२५ ई० में यह एक उपनिवेश करार दिया गया। इस समय इसका शासन-भार एक गवर्नर-जनरल तथा उसकी काउन्सिल के आधीन है। १९३१ ई० में इसकी जन-संख्या २,४७,६३२ थी (Hamerton World Pictorial Gazetteer and Atlas, P. 338)।

३—कीसूस या क्रिन्तूस (Chios—Klarios or Scio) एजियन-सागर में एक टापू है। यह यूनानियों के अधिकार में है। एशिया माइनर के पश्चिमी किनारे में आठ मील की दूरी पर है। इसका क्षेत्रफल ३२१ वर्ग मील है। यह लैवैण्ट (मेडीटेरेनियन के पूर्वी किनारे का फ्रासीसी तथा इटैलियन नाम, जिसमें कि यूनान और सिन भी सम्मिलित हैं) के सर्व सुन्दर टापुओं में से एक है। सुरमा और सगममर पत्थर खान से निकाला जाता है। राजधानी कोयोस है, और जन-संख्या ७१,६८० है (Ibid, P. 359)।



उन पर चिपट जाता है उसे एकत्र कर लेते हैं, और पानी में औंटा कर साफ कर लेते तथा टिकियाँ बांध लेते हैं।

४, कपूर—एक बड़ा वृक्ष है, जो हिन्द-सागर और चीन की घाटियों में होता है। सौ में भी अधिक सवार उसकी छाया में बैठ सकते हैं। कपूर उसके धड़ और शाखाओं में पैदा होता है। कुछ लोग कहते हैं कि गर्मी में बहुत से सांप, टेंदक के लिए उससे लिपट जाते हैं। इनके द्वारा पेड़ को पहचान कर लोग उस पर तोर से निशान लगा देते हैं और जाड़े में अपनी मनोकामना पूरी करते हैं। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि उसके आसपास चीते रहते हैं, और अनुरक्त होने के कारण उससे प्रथक् नहीं होते। कपूर लकड़ी के अन्दर नमक की बहुत छोटी दलियों के सदृश दिखलाई पड़ता है, और लकड़ी के बाहर गोद के समान। वह कभी-कभी पेड़ से वह चलता है, और थोड़ी देर के बाद जम जाता है। जिस माल भूडोल अधिक आते और आममानी हलचल ज्यादा होती है, वह विशेष पैदा होता है। कपूर कई प्रकार का होता है, सब में बढ़िया रिवाही और कैसूरी है। वास्तव में ये दोनों एक ही चीज हैं। जिसके दो नाम पड़ गये हैं। कहते हैं कि कपूर को पहले रिवाह नामक एक पुराने शामक ने सरानदी (लङ्का) के निकट कैसूर गांव में पाया था। कुछ ग्रन्थों में लिखा है कि कपूर बग्ग की तरह सफेद होता है। मैंने अपने हाथ से कपूर को पेड़ से निकाला था, और वह वैसा ही निकला, जैसा कि उनमें लिखा था। परन्तु इन्ने-बेन्तार का कहना है कि वह लाल और चमकीला होता है और साफ करने से सफेद हो जाता है। वास्तव में एक प्रकार का कपूर ऐसा ही होता है, और यह सब प्रकार के कपूरों में अधिक शुद्ध, विशेष श्वेत, बहुत हलका, ज्यादा साफ और श्रेष्ठतर होता है। इसमें उतर कर कुरकू है, यह गाढ़ा काले रंग का होता है। इससे घटिया कौकब है, जो गेहुआ रंग का होता है। सबसे निष्ठुर वालूस है, जिसमें लकड़ी का चूग मिला रहता है। हर प्रकार का कपूर साफ करने से सफेद हो जाता है। कुछ पुस्तकों में ऐसा उल्लेख है कि जो कपूर पेड़ से निकाला जाता है, उसे जौदाना या भीमसेनी कहते हैं। जौ, काली मिर्च और सुख दाना उसके साथ रख देते हैं,

१—मूल आईन में 'व' अर्थात् और पाठ है, ब्लाक्मैन ने भावानुसार 'या' अनुवाद किया है।

२—"कर्मल यूल ने मुझे कैसूरी का

शुद्ध नाम कंसूरी बतलाया है। मार्कोपोलो के अनुसार फंसूर (Fancur) सुमात्रा में एक राज्य था। कदाचित् उसी का नाम बरूस है" (ब्लाक्मैन)।

जिसमें उममें कमी नहीं होने पाती। यूनानी लोग कपूर को, ठंडे पदार्थों में तीसरे दर्जे का ख्याल करते हैं। पर हिन्दुस्तानी उसे गरम मानते हैं। जो कपूर नरकचूर में दूसरी चीजें मिलाकर बनाया जाता है, उसे चीनी कहते हैं, और मैडेल कपूर भी। सफेद नरकचूर को गूँथ पीस कर गाय या भैस का मूत्र मूत्रा मिलाते हैं, चौथे दिन उसमें फिर ताजा मूत्र डालते हैं, और हाथ से इतना थपथपाते हैं कि फेन ऊपर आजाता है। उसको निकाल लेते हैं और उसमें थोड़ा सा कपूर मिलाते हैं। उसको डिट्ठे में भरकर कुछ देर तक अन्न की ढेरी में रख देते हैं। या ऐसा करते हैं कि सफेद पत्थर को गूँथ पीसते हैं, और इसके दम दिग्मर्ष चूर्ण के लिए दो दिग्मर्ष मोम, आधा दिग्मर्ष वनस्पति का तेल या लाल गुलाब (सुर्बगुल)

१—“यूनानी उसा सर्व द्रव्य पाम पाय अंगारद-आ हिन्दी गर्म दानन्द” (आह्वन पृष्ठ ६३) अर्थात् ‘यूनानी ... गरम मानते हैं।’ यह वाक्य ब्लाकमैन के अनुवाद में अनूदित होने से नष्ट गया है (Block-mann's P. 160 P. 161)।

२—आजकल कपूर कई वृक्षों से निकाला जाता है। ये सबके-सब वृक्ष प्रायः दारचीनी जाति के हैं। इनमें प्रधान पेड़ दारचीनी कपूरी मियाने रुद्र का सदाबहार पेड़ है, जो चीन, जापान, कोचीन और फारसूमा में होता है। अब इसके पेड़ हिन्दुस्तान में भी देहरादून और नीलगिरि पर लगाये गये हैं, और कलकत्ते तथा सहारनपुर के कपनी बागों में भी इसके पेड़ हैं। इस से कपूर निकालने की विधि यह है। इसकी पतली-पतली चेलियाँ तथा डालियाँ और जड़ों के टुकड़े पन्ध्र घंटे में जिसमें कुछ दूर तक पानी भरा रहता है, इस ढंग से रक्ख जाते हैं कि उनका लगाव पानी में न रहे। घंटे के नीचे आग जलाई जाती है। आग लगने से लकड़ियों में से कपूर उड़कर ऊपर के ढक्कन में जम जाता है। इसकी लकड़ी भी मट्क आदि बनाने के काम आती है। दारचीनी जीलानी से भी—

जिसका पत्ता तेजपात और छाल दारचीनी होती है, जिसका पेड़ दक्खिन में कोकन से दक्खिन पश्चिमी घाट तक और लका, उता-सरम, उमा आदि स्थानों में होता है—कपूर निकलता है। बराम नामक पेड़ से भी—जो सुमात्रा और बोर्नियो में होता है, कपूर का डाल निकलता है। जापान में भी कपूर बनाया जाता है (शब्दसागर)। मेटीरिया मेडिका के अनुसार कपूर में कार्बन १० भाग, हाईड्रोजन १६ भाग और आक्सीजन १ भाग होता है। इसके तीन भेद हैं—(१) फार्मूसा-कपूर, (२) बोर्नियो या बारस-कपूर जो कि भीमसेनी कहलाता है, (३) ब्लूमिया कपूर। भीमसेनी कपूर बहुमूल्य समझा जाता और बहुत ज्यादा कीमत में बिकता है। यह डच-सुमात्रा में पैदा होने वाले इयोलबालानाम कैमफोरा (Dryobalanops Camphora) नामक वृक्ष के तने में आप-से-आप बन जाता है, और पानी में डूब जाता है (Rakhaldas Gho b, Materia Medica and Therapeutics, P. 57, 1918)।

३—दिरम या दिरहम=३<sup>१</sup>/<sub>२</sub> माशा (ग्यासुल्लुगात)।

प्रयोग करते हैं। पहले मोम को तेल के साथ औटाते हैं, फिर उस चूर्ण को उस में सानते हैं, और दो पत्थरों के बीच में रखके दबाकर हलका ( चौड़ा ) बनाते हैं। जब वह ठंडा हो जाता है, तो कपूर के समान मालूम होता है। स्वार्थी लोग इसके चूर को अमली कपूर में मिला देते हैं और इस प्रकार दूसरों की हानि करके अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

५. जवाद—इसका शाख भी कहते हैं। यह एक पशु का चुआ हुआ मद है, जो विल्ली के समान होता है, पर उससे कुछ बड़ा। उसका चेहरा और श्रृथन अधिक बड़े होते हैं। जब लोग जवाद आचीन इलाक़ों के सामतराई (सुमात्रा) बन्दर से लाते हैं, तो उस ( जवाद ) का सामतराई कहते हैं। वह बहुत बढ़िया होता है। वह टपका हुआ जवाद, मफेद पीलापन लिये हथे रहता है। पशु की पूँछ के नीचे छोट्टे अखरोट के अनुरूप जवाद की थैली होती है। उसमें पाँच-छे छंद होते हैं। सात से पन्द्रह दिन तक में उस नाफे में एक बार जवाद लेते हैं, वह आधा तोला या आठ माशा होता है। कुछ पशु हिल जाते हैं और जवाद लेते समय चुप खड़े रहते हैं। बहुतों की पूँछ पिजड़ के बाहर खोचते हैं और मीपी में शीरे में जवाद ले लेते हैं अथवा उस नाफे को माथ्यानी में निचाँड़ लेते हैं। उस पशु को लोग तीन सौ से पाँच सौ रूपय तक में मोल लेते हैं। नर का जवाद ज्यादा अच्छा होता है, क्योंकि मादा का नाफा उसका मूत्र-स्थान पर होता है। कार्यविज्ञ जवाद को धो-धाकर उपयोग में लाते हैं। फिर यह उत्तमोत्तम सुगन्धियों में हो जाता है। उसकी सुगंध शरीर और वस्त्रों में बहुत दूर में जाती है। उसे कई प्रकार में धोते हैं। उत्तम विधि यह है कि यदि जवाद कम हो तो प्याले में, अन्यथा बड़े बर्तन में नीस बार ठंडे पानी में और तीन बार गरम पानी में धोते हैं। वह गर्मा में कुछ हलका होजाना और मँल अलग होजाना है। फिर तीन बार ठंडे पानी में और धोते हैं, तब वह जम जाता है। पश्चात् तीन बार उसे नींबू के रस में धोते हैं, जिससे उसकी दुर्गन्ध नष्ट होजाती है। तीन बार फिर ठंडे पानी में धोकर और कपड़ों से छानकर चीनी के प्याले में रख लेते हैं। तत्पश्चात् तीन बार गुलाब जल में धोकर, जवाद को उस प्याले में लेस देते हैं। रात में उसको चँबली,

१—इसकी हिन्दी में जवादि कहते हैं। यह दो फुट लंबा, पीलापन लिये हुये भूरे रंग का होता है। इसके सारे बदन में सटमैले रंग के दाग होते हैं। इसे कच्चा अफ्रीका और हबश में पाया जाता है। माँस खाने को दिया जाता है। इसे मुस्क विलाव भी कहते हैं।

रायनेल, गुलाब या कर्ना के फूलों में ओढ़ाकर रखते हैं, और दिन में उनके मुँह पर सफेद कपड़ा बाँधकर धूप में वगते हैं। गीलापन जाता रहता है। उसमें से कुछ लेकर और गुलाब मिलाकर काम में लाते हैं।

६, गौरा—कालापन लिये हुये सफेद होता है, पर जवान के समान सुगन्धित नहीं होता। यह गन्धविलाव के सदृश एक पशु का चूआ हुआ मूत्र है। पर यह जंतु उस से कुछ बड़ा होता है। इसे भी 'आचीन' के आस-पास में लाते हैं। इसका मूल्य सौ से दो सौ रुपए तक होता है।

७, मीद—गौरा के तुल्य है। परन्तु उसमें अधिक निकृष्ट। कोई वस्तु मिलाकर सुगंध बढ़ा लेते हैं। मीद-जंतु अनेक देशों में पाया जाता है। उसका मूल्य पाँच-छ दाम से अधिक नहीं होता। कुछ लोग कहते हैं कि उपर्युक्त जंतु के सूखे नाभों को कूटकर पानी में ओढ़ाते हैं, तब ऊपर आजाता है। उसी को इस नाम से पुकारते हैं।

८, ऊद—हिन्दी में इसे 'अगर' कहते हैं। यह एक वृक्ष की जड़ है। खोदकर उसे जमीन में गाड़ देते हैं, रही भाग गल जाता और शेष शुद्ध ऊद रह जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि भस्मपूर्ण पेड़ गाड़ते हैं। कुछ पुरानी पुस्तकों

१—आचीन एक कमया है और राज्य भी। यह सुमात्रा द्वीप के उत्तर-पश्चिम ईस्ट इण्डोनेज़ में है। रूप से विकर्ता है, किन्तु जो लकड़ी काली होजाती तथा पानी में डूब जाती है और जिसमें गोद अधिक होता है वह २० रुपए सेर तक विकर्ता है।

२—अगर का पेड़ आसाम, बंगाल, खसिया और मर्तवान की पहाड़ियों तथा भूटान में होता है। यह १०० फुट तक ऊँचा और ८ फुट तक मोटा होता है। बीस वर्ष का होने पर इसकी लकड़ी अगर के उपयोग के लिए काटी जाती है। किसी-किसी के मत से २०-६० वर्ष से वह पक्कर उपयोग के योग्य होती है। रस और गंध इसमें बहुत पीछे से आती है। रस आने पर लकड़ी भारी हो जाती और काटकर अगर के नाम से बिकती है। अच्छे पड़ में २०० रुपए से अधिक का अगर निकलता है। पेड़ का कम रस वाला भाग 'टूम' कहलाता और उसकी लकड़ी अधिक से अधिक दो रुपए सेर विकर्ता है, किन्तु जो लकड़ी काली होजाती तथा पानी में डूब जाती है और जिसमें गोद अधिक होता है वह २० रुपए सेर तक विकर्ता है। गिलहट में अगर का दूध बनाया जाता, बम्बई और मद्रास प्रान्त में अगर की वस्तियाँ तैयार होती हैं। नासमझ लोग तगर की ही अगर समझते हैं। किन्तु तगर एक दूसरा ही सुगन्धित लकड़ी होती है। इसका पेड़ अफ़ग़ानिस्तान, काश्मीर, भूटान और कोकण से नदियों के किनारे तथा मडगाँस्कर और जर्जियाँ में पाया जाता है। इसमें अधिक मात्रा में तेल निकलता है। लकड़ी काले रंग की होती है। बुरादा जलाने के काम में आता है। 'भावप्रकाश' के अनुसार तगर की दो जातियाँ हैं। एक में सफेद रंग के और दूसरे में नीले रंग के फूल लगते हैं।

मे जो यह लिखा है कि लोग, अगर मध्य भारत में लाते हैं, वास्तव में यह भूतो को सी कहानी है। कल्पना के अतिरिक्त इस कथन में कोई तथ्य नहीं है। अगर कई प्रकार का होता है। सब से बढ़िया मदली है, उस से उतर कर जबली, जिसे हिन्दुस्तानी भी कहते हैं। इसकी गंध में जुआं, लीग उत्पन्न नहीं होते। इस कारण इसको प्रथमोक्त अगर से अधिक उत्तम मानते हैं। कुछ लोग दोनों को बराबर ख्याल करते हैं। अगर के अन्य उत्तम भेदों में बढ कर समंदरी है, उस में घटिया कुमारी, फिर काकली, बर्दी, कितई और चीनी है। चीनी को किसमूरी भी कहते हैं, वह तर और मीठा होता है। इन में उतरकर जलाली, मायताकी, लवाकी और रैताली है। परन्तु सब किस्मों में मदली सबसे बढ़िया होता है। समंदरी जाति में जो अगर नीला, मोटा, उभरा हुआ, कठोर, रसीला तथा जिसमें सफेदी का निशान नहीं होता एवं आग में दूर तक रहता है, अच्छा होता है। कुछ लोग काले अगर को ज्यादा अच्छा ख्याल करते हैं। कुमारी जाति में, जो अगर नीला, श्रेयता रहित, मोटा, तर, और आग पर दूर तक ठहरता है बढ़िया होता है। सब से बढ़िया काला, कठोर और भारी होता है। वह पानी के तल में बैठ जाता है, और रंगदार नहीं होता तथा आगानी में कुट जाता है। अगर की लकड़ी जो पानी पर तैरती है, निकृष्टतर समझी जाती है। अगरले शामक अगर के वृक्ष को गुजरात में लाये थे, और आजकल चापानेर में पैदा होता है, लोग साधारणतया अगर का आचीन और धनाश्रय में लाते हैं। आजकल उन नगरों का जिनमें इसका होना पुरानी पुस्तकों बतलाती है कही पता नहीं है। इमें सुगंधित

१—पिछले तीनों नाम सदिग्ध हैं आक्रमण से नग आकर १४८२ ई० में (Blochmann's translation, Vol. I, P. 50) अहमदाबाद के बादशाह महमूद ने इस पर अधिकार कर लिया, और उक्त बस्ती के (Note 2) । समीप महमूदाबाद-चापानेर नामक एक नगर

२—चापानेर या चंपानेर दिल्ली में बम्बई जान वाली आम्बे-बटादा-सेगटल-इण्डिया-रेलवे लाइन पर, गोधरा से २२ मील की दूरी पर, एक उजाड़ बस्ती है, जो इसी नाम की पहाड़ी पर है, और जिसमें अब केवल दो ही चार घर शेष हैं। स्टेशन का नाम चापानेररोड है। यह बम्बई प्रान्त में पंचमहल जिले के अन्तर्गत है। पहले यह एक आबाद बस्ती थी। पन्द्रहवीं शताब्दी के तीसरे भाग तक यह नगर एक राजपूत के अधीन था। राजपूतों के

वसाया, जिसके अन्दर अनेक जीवित पशु रहते थे। हुमायूँ ने १५३३ ई० में इसे ध्वंस कर दिया। १८०३ ई० तक इसमें चार-पाँच सौ घर थे। आईने-अकबरी के तृतीय ग्रंथ में कई स्थानों पर इसका उल्लेख हुआ है।

३—धनाश्री या टनासरम लोअर बर्मा में स्याम की सीमा पर है। इसका क्षेत्रफल ३६०८६ वर्ग मील है। शासन-केन्द्र भोलमीन है।

मिश्रणों में मिलते हैं। यह ग्वाने में आनन्द-दायक होता है। अधिकतर मनुष्य इसकी धूनी में आनन्द प्राप्त करते हैं, और कुछ लोग बढिया अगर को पीस कर शरीर और वस्त्रों पर मलते हैं।

९, चोवा—यह अगर की लकड़ी में टपकाया जाता है। ज़ोंटे-बंडे सभी इसका प्रयोग करते हैं। इसके बनाने की विधि इस प्रकार है। बढिया मिट्टी को रई या धान की भूसी में मिलाकर कूटते हैं। जब वह अच्छी तरह मिल जाती है, तब एक छोटी बोटल पर उँगली के पोरों में उम्रे लेसते हैं और सुखा लेते हैं। फिर ऊँद के चूरे को, जो एक सप्ताह पहले से भीगता रहता है, उसमें भरते हैं और कुछ जगह खाली रखते हैं। एक और वर्तन जिसके बीच में छेद होता है, तिपाई पर रखते हैं। और बोटल को ओझाकर उसकी गर्दन उस वर्तन में लगा देते हैं। वर्तन की पेदी में एक प्याला इस प्रकार रखते हैं कि बोटल का मुँह पानी की सतह तक पहुँच जाता है। वर्तन के ऊपर बिनवाँ कड़ा की बीमा आग जलाते हैं। यदि लपट उठती है, तो पानी में बुझाते हैं। अगर के चूरे में भाप उठती है और टपक कर पानी पर स्थिर हो जाती है। उसे एकत्र करके पानी और गुलाब जल में धोते हैं, जिसमें धुँस का अंश साफ हो जाता है। जितना अधिक धोते हैं और जितना ही ज्यादा पुराना होता है, उतना ही अधिक सुगंधित होता है। चोवा काले-रंग का होता है। कोंडे-कोंडे गुणी उसे कारीगरी में मफेंद कर लेते हैं। एक सेर अगर से दो से पन्द्रह तोले तक चावा निकलता है। कुछ लालची लोग उसमें चन्दन और बादाम इत्यादि मिला देते हैं और दूसरों को हानि पहुँचाते हैं।

१०, सन्दल—हिन्दी में इसे चन्दन कहते हैं। इसका वृक्ष चीन में होता है। इस प्रतापी गड्य में वह लाया गया और उसकी खूब बढ़ती हुई। यह तीन प्रकार का होता है—सफेद, पोला और लाल। बहुत लोग लाल चन्दन को सफेद में ज्यादा

१—आजकल कई गंध द्रव्यों में चोवा टपकाया जाता है, जैसे—(अ) देवदार के रस को गर्म करके चुआते, (ब) केशर और कस्तूरी आदि को मरमे के फूलों के रस में मिलाकर और औटाकर टपकाते तथा (स) चन्दन के बुरादे और देवदार के बुरादे मरमे के फूलों में मिलाकर गर्म करते और रस टपकाते हैं। श्रीधर भाषा कोष के अनुसार चोवा या चोआ अर्गजा का नाम है।

२—असली चन्दन मलयगिरि या मलयगिरि अथवा श्रीखंड है। इसका पेड़ मेसूर के दक्षिण और टावकार के पूर्व में मलय पर्वत पर, जो कि पश्चिमीघाट में है, होता है। कुर्ग, हैदराबाद, करनाटक, नीलगिरि पर इसके अनेक पेड़ हैं। उत्तर भारत में भी यह यत्र-तत्र लगाया गया है। वृक्ष लगभग पच्चीस फुट ऊँचा और उसकी पत्तियाँ डेढ़-डेढ़ इंच लंबी बेल्-पत्रों के

ठंडा मानते हैं, किन्तु अनेक व्यक्ति सफेद को। पर वास्तव में सफेद लाल में अधिक शीतल होता है और लाल पीले से ज्यादा ठंडा। सब से बढ़िया पीला और चिकना (तेलवाला) होता है। उसे मकासिरो कहते हैं। लोंग चन्दन को घिसकर शरीर पर मलते हैं और आनन्द मनाते हैं। यह दूसरे तरीकों में भी इस्तेमाल किया जाता है।

**११, सिलारस**—इसको अरबी भाषा में मीयः<sup>१</sup> कहते हैं। यह रुम देश के एक वृक्ष का गोद है। इसे उबालते हैं। साफ सिलारस को मीयण-मायला

आकार की होती है। फूल पत्तियों में निकली हुई डालियों में चार-चार फूलों के गुच्छों में लगते हैं। इसके हीरे में तेल रहता है, जो जड़ में अधिक होता है। सुगंध के कारण इसकी लकड़ी की बनाई हुई चीजों में घुन नहीं लगता। चीन और बर्मा के मन्दिरो में चन्दन का बुरादा रूप के स्थान पर बहुत जलाया जाता है। मफेद चन्दन और पीला चन्दन एक ही पेड़ से निकलता है, किन्तु लाल चन्दन का वृक्ष भिन्न होता है। एक प्रकार का चन्दन जंजिबार में भी आता है जो मलयागिरि के नाम से प्रायः बाजार में बिकता है। क्लोज में चन्दन से दूध और तेल तैयार किया जाता है। तेल बनाने के लिए पहले कूट-कूटकर चन्दन की लकड़ी बनाई जाती है। दो-तीन दिन पानी में भिगोने के बाद उसे भस्म के पर चढ़ाते हैं। भाप द्वारा जमा हुये पानी पर तेल तैरने लगता है। इसे साफ कर लेते हैं। एक मन चन्दन में दो-तीन सेर तेल निकलता है। बढ़िया चन्दन का तेल 'मलयागिरि' और घटिया का 'जहाजी' कहलाता है वनस्पति-विद्या विशारदों के मतानुसार यह वृक्ष बाँदा या कुकुरमुत्ता के समान अपना आहार दूसरे पौधों के रसों से ग्रहण करता है। 'शब्द-सागर' के अनुसार "अरब वाले पहले भारतवर्ष

और लङ्का आदि से चन्दन पश्चिम देशों को ले जाते थे।" 'मल्लजनुल-अदविया डाक्टरी' में लिखा है कि इसके फारसी अरबी नाम 'मन्दल' संस्कृत में और लैटिन तथा अंगरेजी नाम क्रमशः 'मेगटलाई' तथा 'सैण्डल' अरबी में लिखे गये हैं। पुराने हिन्दुओं को चन्दन का पूर्णतया ज्ञान था। निरुक्त, रामायण महाभारत आदि में इसका उल्लेख है। यूनानियों का मिकन्दर के समय में इसका परिचय मिला। यूरोप में सबसे पहले मलेरना-शिक्षणालय (इटली में कैम्पेनिया का नगर तथा बन्दर) में एक चिकित्सक ने ओपधि के रूप में इसका प्रयोग किया। इस्लामी तबीबों (चिकित्सकों) में ममीही और इब्ने-सीना ने पहले इसका वर्णन किया। इसके गुण और वर्म वर्णन करने में हिन्दुस्तानी वैद्यों का अनुसरण किया गया है (गुलाम जीलानी मल्लजनुल-अदविया डाक्टरी जिल्द दोम. पृ० २०३८, १६१६ ई०)।

१—सिलारस लोबान की तरह का एक गोद है। इसका पेड़ १०० फुट तक ऊँचा होता और आजकल पूर्वी बंगाल, आसाम, भूटान, पेंगू, चीन, मलाया, मेरगुई, जावा और यूनान में पाया जाता है। इसके पत्ते चार-चार इंच लंबे कुछ-कुछ कगूरेदार तथा घुंड़ीदार और फूल शाखाओं

( प्रवाहशील सिलारस ) कहते हैं और दूसरे को मीयण-याबिसा ( शुष्क सिलारस ) । सब से बढ़िया वह है, जो स्वेच्छा से बह चले और पीले रंग का हो ।

१२, कलबक—एक पेड़ है भारी और जौहरदार । इसे 'जीवाद्' में लाते हैं । कुछ लोग इसे कच्चा अगर ख्याल करते हैं । इसका चुगादा श्वेत कालिमा लिए हुए होता है । इसे सुगंधियों में मिलाते हैं, और इसकी मालाएँ भी बनाते हैं ।

१३, मलागिर<sup>१</sup>—यह भी उसी ( कलबक ) की तरह का एक पेड़ है । परन्तु यह उतना भारी और जौहरदार नहीं होता । इसका चुगादा सफेद लाली लिये होता है ।

१४, लोबान—एक सुगंधित गोद है<sup>२</sup>, जिसको लोग जावा बन्दर में लाते हैं । कुछ लोग इसे मीयण-याबिसा समझते हैं । यह आग की गर्मी से कपूर की तरह

के छॉंग पर लगते हैं । फल बीजों से भरे होते हैं । आयुर्वेद में यह कड़वा, चर्परा, स्वादिष्ट, स्निग्ध, गर्म, सुगंधित, वर्ण को सुन्दर बनाने वाला तथा त्रिदोषशामक माना गया है । मेरैरिया-मेडिका (Rakhal-das Ghosh, Materia Medica P. 36) के अनुसार इसका उत्पत्ति-स्थान एशिया-माइनर है ।

१—कलबक या कलम्बक—मलागिर या पाला चन्दन—लुगाने-कर्वर । धारा-कटब, हलद—विश्व-काप । कलब, कदम, हरद, करम—शब्द-सागर । हलदू का रस बहुत बड़ा होता और यमुना के पूर्व हिमालय पर ३००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है । इसकी लकड़ी पीले रंग की और मजबूत होती है । ज़िरीबाद बगाल की चरम सीमा पर है—गयामुलुगात । आईन की एक प्रति में जज़ीर-याज़ पाठ है, जिसका अर्थ बाज़द्वीप है, किन्तु बाज़द्वीप के अवस्थान का पता नहीं चलता । ब्लाकमैन ने लिखा है कि यह ज़ेरबाद (वायु के नीचे) है जिसको मैले ब्रावह अंगीन (Malay Bawah Angin) कहते हैं । मैले निवासी सुमात्रा

के पूर्वीय थापुओ और देशों को इसी नाम से अभिव्यक्त करते हैं । खाकीख़ो ने खना के साथ इसका उल्लेख किया है और बतलाया है कि दानो स्थानों पर चगेज़ख़ो के पुत्र तूलाख़ो का शासन था (Khali Khan, I, P. 11) ।

२—यह मलयगिरी है, जिसका पेड़ आसाम, कामरूप और दारजिलिङ में होता है । वसंत ऋतु में इसका बीज बोया जाता है । इसकी छाल पाँच अंगुल तक मोटी और सुगंधित होती है । लकड़ी सफ़ेद पोलापन लिये हुये जाती है, और साफ़ करने पर चमकती है तथा भारी, मजबूत और सुगंधित होने के कारण उसमें कीड़े नहीं लगते ।

३—यह वृक्ष अफ़्रिका के पूर्वी किनारे पर शुमालीलैण्ड में और अरब के दक्षिणी समुद्र-तट पर होता है । कुहरजकर, कुहरउनम, कुहरघगा कुहरयशफ़ा आदि इसी के भेद हैं । इनमें से कई दवा के काम में आते हैं । लोबानकशफ़ा, जिसे धूप भी कहते हैं, भारतवर्ष में लोबान के नाम से बिकता है । गोंद वृक्ष की छाल के



उड़ जाता है। एक प्रकार का लोबान, जिसको कुन्दुरे-दरियाई कहते हैं, यमन में पैदा होता है। उसमें सुगंध नहीं होता।

१५, अज़फ़ारुत्तीब—हिन्दी-भाषा में इसे नख<sup>१</sup> कहते हैं और फारसी में नाखुन-बोया। सीपी के समान दो टुकड़ों वाले एक जंतु के घर से यह उपलब्ध होता है, और संवुल खाने में यह सुगंधित होजाता है। यह हिन्दुस्तान, बसरा और बहरैन के बड़े-बड़े दरियाआ में होता है। पिछले स्थान का ज्यादा अच्छा माना जाता है। कुलजुम (लाल सागर) में भी पैदा होता है। कुछ लोग कुलजुमी को बहुत बढ़िया ख्याल करत है। बहुधा लोग उसे घी के साथ गर्म करते हैं और अनेक व्यक्ति उसे आग की आँच में रखकर पीमन और सुगंधियों मिलाते हैं।

१६, सुगंध कोकिला—(गुगुल<sup>२</sup>) एक पोधा है, हिन्दुस्तान में बहुत होता है। सुगंधियों में काम आता है।

साथ लगा रहता है। अरब से लोबान बम्बई आता है। वहाँ छोट छोट कर उसके भेद किये जाते हैं। जो पीले रंग की बूँदों के रूप के साक़ दाने होते हैं वे कोड़िया कहलाते हैं, उनको छोटकर यूरोप भेज देते हैं तथा मिले-जुले माल और चूरे को भारतवर्ष और चीन के लिए रख लेते हैं। एक और प्रकार का लोबान जावा, सुमात्रा आदि स्थानों से आता है, जिसे जावी लोबान कहते हैं। यूरोप में इससे एक प्रकार का लार बनाया जाता है, जिसे बेंजोइक-एम्बिड कहते हैं (शब्दसागर)। एक प्रकार का लोबान दक्षिणी अमेरिका से भी आता है। यह पाइनस-पैलसटिस या पाइनस-टेइडा नामक वृक्ष को सुरच कर प्राप्त किया जाता है।

१—इसका आकार बहुधा चद्राकार और कभी-कभी घोड़े के सुम और हाथी के कान के सदृश तथा गोलाकार भी होता है। यह सफेद नीला तथा और भी कई रंग का होता है। वैद्यक ग्रंथों में छोटे-बड़े के भेद

में छोटे को बुद्रनम्बी और बड़े को वृहन्नम्बी कहते हैं। इसको जलाने में दुर्गन्ध निकलती है, किन्तु नेल में डालने में सुगंध। यह हलका, गर्म, स्वादिष्ट शुक्रवृद्धक तथा फोडा-फुमी, घाव, विष, कृष्ट, वान श्लेष्मा आदि शामक एवं दुर्गन्ध-नाशक है। संवुल गेहूँ और जौ की बाली तथा बालछट को कहते हैं। यहाँ पर बालछट अभिप्रेत है।

२—इसका पेड काटेदार होता है, जो राजपूताना, काठियावाड़, खानदेश, सिंध, अरब, और अफ्रिका में पाया जाता है। जाड़े के दिनों में इसके छिलके को स्थान-स्थान पर छील देते हैं, जिनसे गोंद के रूप में गुगुल निकलता है। भारतवर्ष में इसका चालान विशेषकर अमरावती से होता है। बम्बई में दरजें बन्द करने के लिए यह गारे में मिलाया जाता है। वैद्यक के अनुसार यह हड्डी जोड़नेवाला, वात-व्याधि और कुष्ठ-नाशक, स्वरशोधक और वीर्यवर्द्धक है।

यन' मुगंधियों का कुछ हाल में निवेदन कर चुका, अब फूलों की कुछ विचित्रताएँ वर्णन करता हूँ ।

१, **सेवती**—शक्र में गुलाब के फूल की तरह का, परन्तु उससे अधिक छोटा। उसके बीच में सुनहला परग होता है। उसमें चार से छे तक पंखडियाँ होती हैं। गुजरात और दक्षिण-भारत में अधिक होता है।

२, **चमेली**—दो प्रकार की होती है। पहली राय चमेली, जिसके फूल में पाँच-छे पंखडियाँ होती हैं, जा बाहर की ओर लाली लिये रहती है। दूसरी चमेली, जिसका फूल ज्यादा छोटा होता है और उसके ऊपर लाल धारियाँ बनी रहती हैं। इसका पौधा डेढ़ से दो गज तक का होता है। वह जमीन पर बोडता है, और उसमें लम्बी-चोड़ी बहुत सी शाखाएँ होती हैं। सालभर का पौधा फूलने लगता है।

३, **रायबेल**—इस का फूल चमेली के सदृश, कई प्रकार का, एक पर्त तथा अधिक पर्तवाला होता है। पाँच पर्त का अधिक होता है। इसके हर पर्त का एक अलाहदा फूल बनाया जा सकता है। इसका पौधा एक गज तक बढ़ता है। इसके वृत् के पत्ते नीवृ के पत्तों के समान, पर उनसे कुछ छोटे और मुलायम होते हैं।

४, **भींगरा**—फूल रायबेल की तरह होता है, परन्तु उसमें अधिक बड़ा। इसमें सों से अधिक पंखडियाँ होती हैं। मुगंध में यह रायबेल की बराबरी नहीं कर सकता। इसका पेड़ बहुत बड़ा होता है।

५, **चम्पा**—इसका फूल गुण्डाकार एक अंगुल लम्बा होता है। इसमें दम तथा रूप से अधिक पंखडियाँ होती हैं। वे पर्तदार होती हैं, उनमें परागकेसर रहता है। इसका वृत्त सुहावना होता है। इसके पत्ते और प्रकाण्ड अखरोट के वृत्त के समान होते हैं। सात साल का चम्पा फूलता है।

६, **केतकी**—सत्तौरी मूल का, चौथाई गज लम्बा और बारह तथा इसमें भी अधिक पंखडियोंवाला होता है। इसकी मुगंध भीनी तथा आनन्द-दायक होती है। छे-सात साल का पेड़ फूलता है।

७, **केवड़ा**—केतकी के सदृश होता है, परन्तु उसके दुगने में भी अधिक बड़ा। इसकी पंखडियाँ काँटदार होती हैं। ये एक ही स्थान पर नहीं उगते।

इसलिए सब केबड़े बराबर नहीं होते। फूल के बीच से शहद के रंग की रेशेदार एक टहनरी निकलती है, जो सुगंध रहित नहीं होती। केबड़े का फूल सूखने के बाद भी सुगंधित रहता है। लोग उसे कपड़ों में रखते हैं, उसकी गंध अर्ध तक बनी रहती है। पेड़ का धड़ चार गज से अधिक लम्बा होता है। उसके पत्ते ज्वार के समान कुछ बड़े, तीन पहल के और तीनों पहल काटेदार होते हैं। चतुर्वर्षीय केबड़ा पुष्पान्वित होता है। लाग प्रति वर्ष उसकी जड़ पर नई मिट्टी चढ़ाते हैं। दक्षिण गुजरात, मालवा और बिहार में बहुत होता है।

८, **चलता**—बड़े लाला (पोस्ते का फूल) के समान होता है। इसमें अठारह पंखड़ियाँ होती हैं, ऊपर की छे पंखड़ियाँ हरी, अन्य छे कुछ लाल, कुछ भूरी-पीली, शेष छे सफेद। बीच में सदावहार के फूल की तरह दो सौ छोटी पीली पंखड़ियाँ होती हैं, और उसके मध्य में लाल गुड़ी होती है। ताड़न के पश्चात् पांच-छे दिन तक फूल हरा-भरा बना रहता है। उसकी गंध बनफश में मिलती-जुलती है। जब फूल कुम्हला जाता है, तो उसे पकांत और खाने है। उसका पेड़ अनार के वृक्ष की तरह का होता है, और पत्तियाँ नीवृ की तरह की। 'सप्त-वर्षीय वृक्ष' फूलता है।

९, **तसबीहगुलाल**—बहुत ज्यादा खुशबूदार होता है। उसकी पंखड़ियाँ तलवार के सदृश होती हैं। पौधे की उँचाई दो गज होती है। चौसाला पेड़ फूलता है। उसकी मालाएँ बनाते हैं, जो एक सप्ताह तक हरी रहती हैं।

१०, **भौलश्री**—चमेली में छोटा, और उसकी पंखड़ियाँ कँगूरदार होती हैं। सूखने पर फल अधिक सुगंधित हो जाता है। उसका वृक्ष अखरोट के समान होता है, और दसमाला पेड़ फूलता है।

१—चलता बैंगल, मद्रास और मध्य-भारत में होता है। इसका पेड़ बड़ा, लकड़ी मजबूत और अन्दर लाल होती है। इसके पुराने पत्तों से हाथी-दंत साफ़ किया जाता है। इसमें बेल जैसा बड़ा फल लगता है। वह कच्चा भी खाया जाता और उसका शाक भी बनाया जाता है। किन्तु रेशे की अधिकता के कारण लोग उसे चूस-चूस कर खाते हैं।

२—मोलसिरी का पेड़ बीजों से पैदा होता है, किन्तु पश्चिमोघाट और कनारा के जंगलों में आपसे आप उत्पन्न होता है। फूलों से दूध बनता, फल खाये जाते, बीजों से तेल निकलता और छाल ओपधियों के काम में आती है। अन्दर की लकड़ी लाल होती है, जिससे मेज़, कुर्सी आदि बनाई जाती है।

११, सिङ्गारहार—( शङ्गारहार ) लौंग की शक्त का और डंडा नारंगी रंग की, पराग पोस्ते के दाने के तुल्य, पेड़ अनार के सदृश और पत्तों शफ़ालू के पत्तों के समान होते हैं। पाँच साल का पेड़ फ़लता है।

१२, कूजा—मृगत-शक्ल गुलाब के फ़ल की तरह, पेड़ उसमें अधिक बड़ा और पत्तियाँ उसी के समान होती हैं। यह पाँच अथवा सौ पंग्वडियों वाला होता है। बीच में सुनहला पराग रहता है। इसमें अवीरमाया बनाने और गुलाब खींचने हैं।

१३, पाटल—इसमें पाँच-छे लम्बी पंग्वडियाँ होती हैं। यह जल को स्वादिष्ट और सुगन्धित बनाता है। अधिकतर मनुष्य इसके फ़ल को मिट्टी में मिलाकर रख छोड़ते हैं, और दुष्प्राण्य समय में इसको पानी में डालते हैं। वृक्ष और पत्ते अखरोट के समान, बाग़माला फ़लता है।

१४, जूही—पत्ते छोटे होते हैं। इसकी बेल पेंड में लिपट जाती है। तिसाला पौधा फ़लता है।

१५, निवारी—फ़ल राखंड के समान होता है, पर केवल एक पत्ते का। इसका पौधा और पत्तियाँ उसमें कुछ बड़ी होती हैं। इतना ग़िलता है कि पत्ते और डालियाँ छिप जाती हैं। एक साल का पौधा फ़लता है।

१६, कपूरबेल—पाँच पंग्वडियों का, केसर के फ़ल की तरह होता है। यह पेंड वर्तमान-शासन में यूरोप में लाया गया।

१७, जाफ़रान—(केशर) उर्दीबहिष्ट महीन के आरम्भ में बीज को, विशेष रीति से तैयार की हुई तथा मुलायम बनाई हुई जमीन में गाड़ देने हैं और

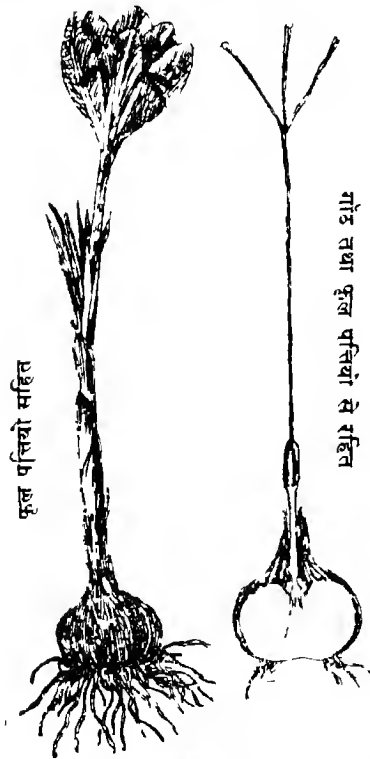
१—मोनिया या बेल का फ़ल। इसका एक भेद मदनबान है, जिसकी कली एक छेद लंबी होती है।

२—पाटला या पाटल के पेड़ में लाल और सफ़ेद फ़ल लगते हैं। 'लुगाने-कबीर' के अनुसार इसकी फली आध ग़ज़ लंबी और चार अंगुल तक चौड़ी होती है। उसमें रुई जैसी एक चीज़ निकलती है। कहीं-कहीं फ़ल कालिमा और पीलापन लिये हुये भी होते हैं। पत्ते बेल-पत्र के समान

होते हैं।

३—एक सौरमाय का नाम, जो हिन्दुस्तानी जेठ या उसके आस-पास पड़ता है। यह शब्द यौगिक है। उर्दे का अर्थ सदृश है और बहिष्ट स्वर्ग या बाटिका का कहते हैं। अब उर्दीबहिष्ट का अर्थ 'स्वर्ग के समान' होता है। ईरान और तूरान में वसत अबु लगभग इसी मास में पड़ा करती है, इस कारण यह मास उपर्युक्त नाम से प्रसिद्ध हुआ (गयासुल्लात)।

वर्षा के पानी से सींचते हैं। बीज एक गोल गाँठ होती है लहसुन के अनुरूप। केशर आबान (लगभग अग्रहण) मास के मध्य में फूलता है। उसकी डाली चौथाई गज लम्बी होती है। परन्तु भूमि-बल की भिन्नता के कारण कभी उसके दो भाग जमीन के ऊपर रहते हैं और कभी उसके नीचे। उसके सिरे पर फूल लगता है। उसमें छे पंखड़ियाँ और छे रेशे होते हैं। इनमें से पहली तीन पंखड़ियाँ नीले रंग की बहुत तर होती हैं, शेष तीन और उन्हीं के तुल्य उनके आस-पास लगी रहती हैं। इन छे पंखड़ियों के बीच में तीन पीले रेशे होते हैं, जो तीन लाल रंग के रेशों के आस-पास रहते हैं। केशर में मतलब इन्हीं तीनों अंतिम जीरो का है। लोग सुनहले जीरे चालाकी में मिला देते हैं। पूर्वकाल में केशर चुनने के लिए मनुष्य बलपूर्वक लाये जाते थे, वे उसको पंखड़ियाँ और रेशों में पृथक् करते थे। उनको मजदूरी में नमक दिया जाता था। जो आदमी दो पल साफ करता था, दो पल नमक पाता था। पर गार्जार्खों चक्र के समय में निम्नलिखित प्रथा प्रचलित हुई। लोग ग्यारह तक फूलों मजदूरी को साफ करने



केशर का पौधा

१—केशर का सविस्तर वर्णन सूबा काबुल के अन्तर्गत कश्मीर सरकार के विस्तृत विवरण में देखिये।

२—“यह शेरजों का समकालीन था, जैसा कि तृतीय ग्रंथ में अबुलक़लक़ुत कश्मीर के शासकों की सूची में प्रकट होता है। एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल के हस्तलिखित ग्रंथ न० ४५—मआमिरे-रहीमी—के आरम्भ में गाजीगों का एक उत्तम जीवन-चरित्र दिया हुआ है” (Blochmann trans P 81 Note 2)। इसके पिता का नाम काजी चक्र था।

३—केशर का पौधा स्पेन, फारस, कश्मीर और चीन में होता है। पर कश्मीर का केशर सर्वोत्तम माना जाता है। इसका फूल बैंगनी रंग की भाँई लिये बहुत रंग का होता है, और पौधे में फूल निकलने के बाद पत्तियाँ निकलती हैं। प्रत्येक फूल में केवल तीन केसर होते हैं, इसीलिए आधी छुट्टी के अरसल केशर के लिए प्रायः ४००० फूलों की आवश्यकता होती है। केशर निकाल लेने के बाद फूल को धूप में सुखाकर हलके

को देते थे। उससे से वे (मजदूर) एक तर्क फूल, माफ करने की मजदूरी के लिए निकाल लेते थे। शेष दस तर्क फूलों के लिए उनमें दो सेर अकबरशाही खालिस और सूखी केशर लेते थे। सारांश यह है कि दो मन अकबरशाही केशर के फूलों से दो सेर खालिस केशर लेते थे। परन्तु जब सम्राट ने तीसरी बार कश्मीर में पदार्पण किया, तो इस प्रथा को रद्द कर दिया। लोगों को इससे बहुत आराम हो गया। बीज एक बार जमीन में गाड़ते हैं और वह छे साल तक फूलता है, परन्तु भूमि को प्रतिवर्ष मुलायम करने रहते हैं। पहले और दूसरे साल वह कम फूलता है, पर तीसरे साल पूर्णतया खिल जाता है। जब छे साल बीत जाते और यदि उम गाठ को भूमि में नहीं निकालते हैं, तो वह खराब हो जाती है। इसलिए वाध्य होकर उसे खोद कर दूसरे स्थान पर लगाने हैं। पर पुरानी जमीन को पाच साल और ग्वाली पड़ी रहने देते हैं। केशर विशेषकर जिला मर्राज के गाव पनपूर में होती हैं। वहाँ अनुमानत

डंडो में कुटते हैं और फिर उसे किसी जल-भरे बर्तन में डाल देते हैं। उसमें से, जो अंश नीचे बैठ जाता है, वह “मोगला” कहलाता है और मध्यम श्रेणी का केसर होता है। जो अंश जल में न डूबकर पानी के ऊपर रह जाता है, वह फिर सुखाकर और कूटकर पानी में डाला जाता है। इस बार जो केसर जल में डूब जाता है वह निम्न श्रेणी का होता है और “नीबल” या ‘निबल’ कहलाता है। केसर का पोधा विशेष प्रकार की ढालुवाँ जमीन में होता है, जो इसी कार्य के लिए आठ वर्ष पहले से बिल्कुल परती छोड़ दी जाती है। इस पोधे की गाँठ जमीन में गाड़ दी जाती है, और एक बार की लगाई हुई गाँठों से चौदह वर्ष तक फूल निकलते रहते हैं। इसके फूल कार्तिक में लगते और सग्रह किये जाते हैं। वैद्यक में केसर को सुगन्धित, तिक्त, रुचिकारक, कातिवर्द्धक, कडुनाशक, विरेचक और कास, वायु, कफ, कृमि तथा त्रिदोष-नाशक माना है। डाक्टरों मत से यह ज्वर और यकृत-नाशक और रजोनिस्सारक

है, पर आजकल के कुछ नए डाक्टर इसका कोई गुण स्वीकार नहीं करते (शब्द-सागर)। हिक्मत की किताबों में इसका स्थान दूसरे दर्जे की गर्म और पहले दर्जे की शुष्क दवाइयों में है।

१—१ कश्मीरी तर्क = ८ अकबरशाही सेर = ४ कश्मीरी मन। १ कश्मीरी मन = ४ कश्मीरी सेर। १ कश्मीरी सेर = ७<sup>१</sup>/<sub>२</sub> पल। पल का फारसी में शुद्धोच्चारण पुल है जो पुल का सच्चिसरूप है। अरब-वाले इसे कल्प कहते हैं और हिन्दुस्तानी पैसा। पल संस्कृत शब्द है। साधारणतया १ पल = ४ कर्प = ४ तोला। वैद्यक में १ कर्प = ८ तोला, किन्तु अन्यत्र ३ तोला ४ माशा। तर्क का अर्थ भाग या अंश है।

२—ये स्थान कश्मीर की राजधानी श्रीनगर के दक्षिण में अवस्थित हैं। तृतीय ग्रंथ में सूबा काबुल के वर्णन में मर्राज के स्थान पर मरराज पाठ है (Blochmann's trans P, 84, Note 4)।

बारह कोस तक उसके खेत हैं। कमराज की ओर इन्द्रकुल के निकट परसपुर के परगने में भी एक कोस तक उसकी खेतीवाड़ी हांती है।

१८, **आफताबी**—( सूर्यमुखी ) गोल, चौड़ा, बड़ा और पुष्पदल में भरा हुआ, सदा सूर्य की ओर देखता रहता है। इसका पौधा तीन गज तक बढ़ता है।

१९, **कँवल**—( कमल ) दो प्रकार का हांता है। इनमें से एक, सूर्य के प्रकाशित होने पर विकसित होता है। सूर्य, जिस ओर को जाता है, वह उसी तरफ को घूमता जाता है और सायंकाल कली हो जाता है। यह लाला के फूल के सदृश होता है, परन्तु इसकी लालिमा श्वेतता लिये रहती है। इसमें छे से कम पंखडियाँ नहीं होती। इनके अन्दर पीले रंग होते हैं। इनके बीच में गाजर की आकृति की एक गांठ सी होती है, जिसका आधार ऊपर को होता है। यही उसका फल है, जिसमें से बीज निकलते हैं। दूसरे प्रकार का कमल, चार पंखडियों का मफेद रंग का होता है। यह उमी प्रकार चन्द्रमा के प्रकाश में खिलता और घूमता है, परन्तु बन्द नहीं होता।

२०, **जाफरी**—( एक प्रकार का गेदा ) गोल मुहावना फूल है। यह गेदे से ज्यादा बढ़ता है। एक पच-पखुडिया और दूसरा सौ पंखुडिया होता है। सौ-पखुडिया जाफरी दो महीने तक हरा भरा बना रहता है। उसका पेड़ आदमी के बराबर ऊँचा होता है, और पत्तियाँ घन की पत्तियों के सदृश, परन्तु कँगूरदार। दो महीने का पंड़ फूलता है।

२१, **गुडहल**—लाला जुगासू के फूल के समान, पंखडियों में परिपूर्ण,

१—कमल चैत-वैसाख से सावन-भादों तक फूलता है। 'शब्द-सागर' के अनुसार इसके डंठल के सूत में बटकर मन्दिरो में जलाने की बत्तियाँ बनाई जाती हैं। प्राचीन काल में इसके कपड़े भी बनते थे। वैद्यक के अनुसार इस सूत के कपड़े से ज्वर दूर हो जाता है। मधु-मक्खियाँ कमल के रस को लेकर जो मधु बनाती हैं, वह श्राव्यो के लिए उपकारी होता है। उमरा (अमेरिका) टापू में एक प्रकार के कमल के पुष्प का

व्यास १२ इंच और पत्ते का व्यास साढ़े छे फुट होता है। एक प्रकार के लाल-कमल के बीज से, जिसमें गंध नहीं होती, तेल निकलता है। लाल-कमल भारतवर्ष में प्रायः सब प्रान्तों में मिलता है। श्वेत-कमल काशी के आस-पास के स्थानों में पाया जाता है। नील-कमल कश्मीर के उत्तर तिब्बत में और कहीं-कहीं चीन में होता है। पीत-कमल अमेरिका, साइबेरिया और जर्मनी इत्यादि में उगता है।

पौधा दो गज का तथा इससे भी बड़ा, और पत्ते शहतूत की तरह के होते हैं। दो साल का पौधा फूलता है<sup>१</sup>।

२२, रत्नमजनी—चार पंखड़ियों का, चमेली में छोटा होता है। पेड़ और पत्ते रायफल के सदृश होते हैं। दोसाला पौधा फूलता है।

२३, केसू—( टेसू ) पाँच पंखड़ियों का, और प्रत्येक दल व्याघ्रनख के सदृश होता है। उनके बीच में जीभ के आकार का एक पीला रेशा होता है। इसका वृत्त बहुत बड़ा होता है और प्रत्येक वन में खिलता है, जिसमें मसार में शाभा की आग लग जाती है।

२४, कनेर—अधिक समय तक खिला रहता है। देखने में भला मालूम होता है, परन्तु होता है जहरीला<sup>२</sup>। जो कोई उसे अपने शिर पर रखता है, लड़ने लगता है। विशेषकर पाँच पंखड़ियों का होता है। शाखाएँ पुष्पा से परिपूर्ण रहती हैं। वृत्त दो गज से भी अधिक बढ़ता है। एक वर्षीय वृत्त पुष्पान्वित होता है।

२५, कदम—उमागा<sup>३</sup> के सदृश होता है। पेड़ और पत्ते अग्रोराट के समान होते हैं।

१—गुडहर या अटुल की दो-तीन पत्तियाँ चवाने के बाद यदि गुड़ खाया जाय तो उसका स्वाद ही नहीं जान पड़ता। पुराना विश्वास है कि गुडहर का फूल घर में रहने से लड़ाई होती है। यह छोटा-बड़ा दो प्रकार का होता है।

२—इसकी पतली डालियों को उबाल कर एक प्रकार का घटिया कत्था तैयार किया जाता है, जो बंगाल में खाया जाता है। जड़ की छाल की रस्सियों बनाई जाती है। इससे ढरी और कागज़ भी बनाया जाता है। कोयला, ईंधन, फूलों का रंग, फली की बुकनी का अवीर, नावों की ढराज़ें पन्दा करने के लिए बकेलू उदर-कृमि-नाशक बीज तथा उपयोगी गोद इसी वृक्ष से उपलब्ध होता है। यह हिन्दुओं के पवित्र वृक्षों में है। श्रोत-सूत्रों में इसी के अनेक यज्ञ-पात्र बनाने की विधि है। उपनयन-संस्कार में

ब्रह्मचारी इसी का दंड धारण करता है। यह ४००० फुट की उंची पहाड़ियों तक मिलता है। यह भारतवर्ष के सब सूबों में बहुधा वृक्ष छप (पौधा) और कहीं-कहीं लता के रूप में भी पाया जाता है।

३—सफेद फूल का कनेर अधिक विप्रेला होता है। घांटे के लिए कनेर सयदूर विप है। इसी लिए संस्कृत-कोषों में इसके नाम हयमार और अश्वत्थ आदि मिलते हैं। 'मधुजनुलमुकरिदात' के अनुसार गंधा इसके पास नहीं जाता। 'निघंटुस्तोत्र' में काले रंग के फूल की कनेर का भी उल्लेख है।

४—शाही टोपी के समान ( Blochmann's trans. P. 85 )। प्राचीन काल में इसके फलों से एक प्रकार की मदिरा बनाई जाती थी, जिसे कादंबरा कहते थे ( शब्द-सागर )।



२६, नागकेसर—गुलाब के फूल के सदृश। पाँच पंखड़ियों का पराग से भरा होता है। पेड़ और पत्ते अखरोट के समान होते हैं। सात साल का पेड़ फूलता है।

२७, सुरपन—तिल के फूल के समान होता है। उसके बीच में पान पुष्पगज रहता है। उसका पौधा हिना (मेहेंदी) के सदृश और पत्ते वृंत के समान होते हैं।

२८, श्रीखंडी—चमेली के फूल के समान, परन्तु अधिक छोटा। दोमाला पौधा फूलता है।

२९, हिना—( मेहेंदी<sup>२</sup>) इसमें चार पंखड़ियाँ होती हैं, और यह ताकमान के फूल की रात का होता है। विभिन्न पेड़ों में विभिन्न रंग के फूल मिलते हैं।

३०, दुपहरिया—गोल, छोटा, सदाबहार के अनुरूप। यह दुपहर को मिलता है। इसका पौधा दो गज का होता है।

३१, भूचम्पा—कुमदती के फूल के सदृश, पाँच पंखड़ियों का, और डंडी वालिस्तभर की जाती है। जिस जमीन में यहिया आकर निकल जाती है, यह उसी में उगता है। पानी के ऊपर एक-दो पौधों के अतिरिक्त नहीं दिखलाई पड़ते हैं।

१—इसका पेड़ बगाल, आसाम, बर्मा दक्षिण-भारत और सिहल आदि में पाया जाता है। इसकी लकड़ी इतनी कठोर और उत्तम होती है कि काटने में तो कुल्हाड़ियों टूटती हैं, पर हाथ फेरने से ही वानिष हो जाती है। सूखे फूलों से औषधियाँ, मसाले और रंग बनाये जाते हैं। रंग से रेशम रंगा जाता है। सिहल में बीजों से तेल निकालकर दिया जलाते और दवा के काम में लाते हैं। मद्रास में यही तेल वान रोग में इस्तेमाल किया जाता है।

२—इसके पेड़ मद्रास, सिहल, बर्मा और उड़ीसा में समुद्र-तट पर, जहाँ प्रायः अन्य वृक्ष नहीं उगते, आपसे आप अधिकता से होते हैं। इसकी लकड़ी अधिक मजबूती के कारण जहाज के मस्तूल और रेल की

पटरों के नीचे लगाने के काम में आता है। लाल फूल गुच्छों में लगते हैं। उनके अन्दर का पराग पुलाग-केसर कहलाता है जिसमें दवाई बनाई जाती है। फलों के बीज में तेल निकलता है।

३—मेहेंदी बिलाचिस्तान के जंगलों में आपसे आप होती है। भारतवर्ष में और सब कहीं लगाई जाती है।

४—मुद्गचपा या भूमिचपक का पौधा भारतवर्ष, बर्मा, जावा और लङ्का आदि में होता है। इसके पत्ते लंबे और सुन्दर तथा फूल सुगंधित होते हैं। यह प्रायः बार्गाचो में लगाया जाता है। इसकी छाल, पत्ते और जड़ औषधि के काम में आते हैं। इसकी जड़ फोड़ा पकाती और छाल का चूर्ण घाव भरता है।

३२, सुदर्शन—रायगेल के समान होता है। फूल के अन्दर पोले रसे रहते हैं। उसका पौधा सौसन<sup>१</sup> के तुल्य होता है।

३३, सेंबल—पाँच पंखड़ियों का होता है, हर पंखड़ी दस अंगुल लम्बी और तीन अंगुल चौड़ी होती है।

३४, रत्नमाला—गोल और छोटा। उसके रस को औटाकर फटकरी और कुसुम में मिलाते हैं। उसमें कपड़े रंगते हैं, पक्के लाल पड़ जाते हैं। गाय के घी और तिल के तेल को उसकी जड़ के साथ औटाते हैं, मिश्रण लाल नारंगी रंग का होजाता है।

३५, मृनज्जद—फल चमेली की तरह का, पर उसमें कुछ बड़ा, पाँच-छे पंखड़िया का होता है। उसका पौधा चमेली के अनुरूप होता है। दो साल का पौधा फूलता है।

३६, मालती—फल चमेली की तरह का, परन्तु उसमें कुछ छोटा होता है। उसके अन्दर पोम्मे के दानों के सदृश पराग होता है। न्यूनाधिक दो साल का बिगड़ा फूलता है।

३७, करील—छोटी तीन पंखड़ियों का होता है और अधिक फूलता है। इसके दन्वने में आनन्द प्राप्त होता है। लोग फूलों को उबालते और खाते हैं तथा अचार भी बनाते हैं।

३८, जैत—इसका लुप बड़ा रूख होजाता है। इसकी पत्तियाँ इसली की पत्तियों के समान होती हैं।

१—सौसन या सोमन का पौधा फारस की ओर का है, और भारतवर्ष में कश्मीर आदि प्रदेशों में हाता है। सफेद और नीली इसकी दो जातियाँ हैं। सफेद को आज़ाद और नीले को ईरसा कहते हैं। इसकी जड़ में एक साथ कई डंठल निकलते हैं। पत्ते हाथ-हाथ भर के, मुलायम, लंबे, आध-आध अंगुल चौड़े और नोकदार होते हैं। फूलों की पंखड़ियाँ नीलापन लिये हुये लाल-लाल, नुकीली और आध अंगुल चौड़ी होती हैं। बीज-कोष छे-पहले और

चौचदार होते हैं। हकीमी में यह ओषधि के काम आता और उष्ण तथा शुष्क माना जाता है। इसके पत्तों को चबाकर निकाला हुआ रस आँख के घाव, रतोधी, सबज और नागवृना के लिए लाभदायक है। शिर-पीडा, कफ और वात के लिए भी यह उपयोगी है। फारसी-कवि जिह्वा की उपमा इसकी पंखड़ी से देते हैं।

२—जैत, जैत, जैता जयन्ती का नाम है। इसके फूल अरहर के फूलों के समान पीले होते हैं। फलियाँ एक या सवा

३९, चँपला—इसका फूल गुलदस्ते के समान होता है। इसके वृक्ष के पत्ते अखरोट के पत्तों से मिलते-जुलते हैं। दो साल का पेड़ फूलता है। जब पेड़ की छाल को पानी में औंटाते हैं, पानी लाल होजाता है। यह अधिकतर पहाड़ों में होता है। इसकी लकड़ी मोमबत्ती की तरह जलती है।

४०, लाही—इसका बिरवा डेढ़ गज का होता है। फूलने के पहले उसके डंठलो का बहुत बढ़िया शाक बनता है। ऊँट इसके खाने से मोटा और मस्त हो जाता है।

४१, करौदा—फूल जुही के सदृश होता है।

४२, धनन्तर—कुमदिनी की तरह का बहुत सुहावना मालूम होता है। यह बेलदार होता है।

४३, सिरस—फूल में रश्मी भागों के सदृश डोरे होते हैं और तुमगा के आकार का होता है। यह दूर से सुगंध देता है। यद्यपि लोग पीपल और वरगद की पूजा करते हैं किन्तु सिरस के पेड़ को वृक्ष-राज कहते हैं। इसका भाड़ बहुत बड़ा होता है और इसकी लकड़ी मकान बनाने में काम आती है। इसके प्रकारों के अन्दर में काली लकड़ी निकलती है, उसमें बसूला नहीं गड़ता है।

४४, कंगलाई—इसके फूल में पाँच पंखड़ियाँ होती हैं, जिनमें से प्रत्येक चार अंगुल लंबी और बहुत शोभायमान होती हैं। हर डाल में एक से अधिक फूल नहीं ग्वलता है।

४५, सन—गुलदस्ते की तरह का होता है। इसके पौधे के पत्ते चनार के सदृश होते हैं। इसकी छाल की रस्मियाँ बनती हैं, वे बहुत मजबूत होती हैं। एक प्रकार के सन का फूल कपास के फूल के समान होता है, उसको पटसन कहते हैं। उसकी रस्मी बहुत सुलायम होती है।

इस देश के फूलों का हाल वर्णन करना, मुझ जैसे अज्ञान के लिए बहुत ही कठिन है। केवल लोगों की जानकारी के लिए उनका कुछ वृत्तान्त लिख दिया

<p>बालिशत तक लंबी होती है। इसकी छोटी जाति चक्र-भेद कहलाती है, जिसके रेशे से जाल बुना जाता है। फलियाँ दस्त की बीमारी में काम देती उनसे खुजली का</p>	<p>मरहम बनाया जाता, पत्तियाँ सूजन को पटकारती और जड़ पीसकर लगाने से बिच्छू का विष दूर हो जाता है।</p>
--	--

है। ईरानी और तूरानी फूल, जैसे गुले-मुखर् ( गुलाब ), नरगिस<sup>१</sup>, वनफशा<sup>२</sup>, याम्मन-कबूद<sup>३</sup>, सौमन<sup>४</sup>, रैहौ<sup>५</sup>, गना<sup>६</sup>, जेबा, शकायक<sup>७</sup>, ताज-शुरूस<sup>८</sup>, कलगा<sup>९</sup>, नाफरमान, खतमी<sup>१०</sup> इत्यादि भी बहुत होते हैं। बाग और फुलचारियाँ जगह-जगह नेत्रों को विकसित कर रही हैं। पहले, लोग वाटिकाओं में पौधों के बानों का कोई क्रम नहीं रखते थे, परन्तु जब से बाबर ने हिन्दुस्तान में पदार्पण किया, तब से क्यारी बनाने और सजधज करने की प्रथा प्रचलित होगई है। परिणामस्वरूप, यहाँ के चित्ताकर्षक भवनो एवं कलकलकारी भरणों ने विश्व-पर्यटकों को चकित कर दिया है।

इस राष्ट्र के उन वृत्तों के वृत्तान्त की व्याख्या करना, जिनके फल, फूल, कली, पत्ते और कंद-मूल आदि आहार और औषधियों के काम में आते हैं, असंभव है। हिन्दी ( हिन्दुओं के ) ग्रन्थों में यह लिखा हुआ है कि यदि प्रत्येक वृत्त में केवल एक-एक पत्ता लेकर संग्रह करें, तो अट्ठारह बार एकत्र हो जायेंगे। ५ रत्ती का १ माशा, १६ माशे का १ कर्ग, ४ कर्ग का १ पल, १०० पल का १ तुला, और २० तुला का १ बार होता है। यदि इस बार को वर्तमान

१—नरगिस की जड़ प्याज़ की गोंठ-जैसी और पौधा भी प्याज़ के पौधे के समान होता है। फूल सफेद रंग का कटोरी के आकार का और बीच में गोल काले धब्बे-वाला होता है। इसकी सुगंध बड़ी मनोहर होती है। फूल का इत्र बहुत अच्छा होता है। फ़ारसी और उर्दू के शायर नरगिस के फूल में आँखों की उपमा देते हैं।

२—यह वनस्पति नेपाल, कश्मीर और हिमालय पर्वत पर होती है। पौधा छोटा, पत्तियाँ अनार की पत्तियों-जैसी और फूल बैंगनी रंग के होते हैं।

३—याम्मन चमेली का फ़ारसी नाम है और कबूद का अर्थ नीला है। नीली चमेली। साधारणतया सफेद और पीली दो प्रकार की चमेली होती है।

४—फूल नं० ३२ का फ़ोटो-नोट नं० १, पृष्ठ १८५, देखिये।

५—नाज़बू, तुलसी।

६—रञ्जना का फूल अन्दर से लाल

और बाहर से पीला होता है।

७—लाला या पोस्ता के फूल का एक भेद, जिसको शकायकूल नुश्रमान भी कहते हैं। नुश्रमानबिनसुज़र एक जंगल में जा रहा था, उसमें लाला अधिक था। जब उसकी उत्कृष्ट सुन्दरता दृष्टि में पड़ी तो उसने आज्ञा दी कि उसका पोषण एत्र रत्ना की जाय (मुन्तख़िबुल्लुगान)। लाला के अनंक भेद हैं, जैसे पहाड़ी, जगली, नुश्रमानी, शकायक, डिलसोमन, डिलसोज़, खनाई खुदरूई, सफ़ेद, ज़र्द, अब्बासी, पैकानी, मिक्लराज़ी और दुख्तरी। बाबर ने 'वाक़यातबाबरी' में लिखा है कि काबुल के किसी-किसी ओर पचास प्रकार के लाला दृष्टिगत हुये (गयासुल्लुगान)। गुलअब्बास में बरसात में लाल और पीले दोनों रंग के फूल लगते हैं।

८—सुर्गकैम।

९—सुर्गकैम का एक भेद।

१०—गुलखैरू। फूल नीले रंग का होता है।

समय के बांटो से तोलें, तो ६६ मन निकलेगा । उनका यह भी कथन है कि वृत्त का जीवन-काल दो घड़ी से न्यून और दस हजार वर्ष से अधिक नहीं होता और उँचाई एक हजार योजन<sup>१</sup> तथा कुछ अधिक से विशेष नहीं होती । वे यह भी बतलाते हैं कि जब वृत्त का जीवन समाप्त होता है, तो उसका प्राण निम्न-लिखित दस पदार्थों में से एक के साथ मिल जाता है—अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, वनस्पति, पशु, इंद्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय प्राणी ।

## आईन ३१ ।

### करकारागर<sup>२</sup> ।

सम्राट के ध्यान देने से तरह-तरह के कपड़े तैयार होगये हैं तथा ईरानी, योरोपीय और खताई<sup>३</sup> कपड़ों के ढर लग गये हैं । निपुण शिल्पियों ने आकर यहाँ के लोगों को कपड़ा बुनना सिखाया है । शाही कारखाना में, लाहौर, आगरा, फतेहपुर, अहमदाबाद<sup>४</sup> और गुजरात में अन्युत्तम वस्त्र<sup>५</sup> बुने

१—देखिये पृ० १७३ न० १०, मन्दल तथा नाट न० २ । छैनसाग जब भारतवर्ष में अपने देश को वापस गया था तो वह अन्य वस्तुओं के साथ बुद्ध की सोने-चांदी की मूर्तियाँ, हस्त-लिखित ग्रंथ और चन्दन भी ले गया था (Mookerji's Harsh) । इसमें उत्तम चन्दन का इस देश में हाना तथा चीन का जाना स्पष्ट सिद्ध होता है ।

२—मूल-ग्रंथ में 'करकाराग्राना व तोशक-खाना' शीर्षक है । शब्द 'करकाराग्र' कोषों में ढूँँढे नहीं मिलता । मि० ब्लाक्मैन ने इस शब्द का शुद्धोच्चारण कुर्क—यराक = 'कुर्कीराग्र' माना है, जिससे शब्द का अर्थ विषय के अनुरूप हो जाता है । कुर्क से आशय उस सलोम चर्म से है, जिसकी बहुधा यूरोपियन महिलाएँ अपने कंधों पर डालती हैं । इसकी अंग्रेजी भाषा में

फर ( Fur ) कहते हैं । 'बहारे-अजम' के अनुसार इस उन में मुलायम और सुन्दर शाल-दुशालें भी तैयार किये जाते हैं । यराक का मतलब 'सामान' से है । हमने इन सबके लिए केवल वस्त्रागर शब्द प्रयोग किया है ।

३—खाना देश के वस्त्र । खाना तुर्किस्तान तुरान और चीन के बीच का प्रदेश है—गयासुल्लुगात । मंगोलिया—ब्लाक्मैन ।

४—मि० ब्लाक्मैन का कहना है कि अहमदाबाद के बाद 'और' शब्द अशुद्ध है क्योंकि, अहमदाबाद बहुधा अहमदाबादे-गुजरात कहलाता है ।

५—भारतीयों को बहुत प्राचीन काल से कपास की उत्पत्ति, सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े की कतार्ई, बुनाई आदि का ज्ञान रहा है । 'ऋग्वेदिक-इण्डिया' में

जाने लगे है। भौंति-भौंति के चित्र, बेल-बूटे, गाँठे और अनूठी वजो का चलन होगया है, जिनको देखकर वस्तु-पारखी संसार-यात्री चकित होंगये है। बुद्धिमान्

लिखा है कि “वैदिककाल में भेड़ों का उन काता जाता था, और उसमें ऊनी कपड़े बुने जाते थे। अनेक व्यक्तियों ने इस कला को सीख लिया, और बिनाई का धंधा करने लगे, वे ही लोग तन्तुवाय कहलाये” (Avinash Chundradass, Rigvedic India P 126, 1925)। वैदिककाल में करघे का नाम तत्र था (त एते चाचमभि पद्य पापया मिरीमन्त्र तन्वते अप्रजज्ञयः—ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ७१, मंत्र ६) और सूत तन्तु कहलाता था (तन्तु ततं सवयस्ती समीची—ऋ० म० २, सू० ३, मंत्र ६)। एक म्थल पर आदेश है कि माता अपने पुत्र के लिए वस्त्र बुने (वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति—ऋ०, म० ५, सूक्त ४७, मंत्र ६)। वैदिककाल में हर कुटुम्ब अपने सामान्य उपयोग के लिए वस्त्र तैयार करता था, और बुनाई का काम साधारणतया स्त्रियों के सुपुर्ण था (Rigvedic India, P 126)।

“मोहनजोदड़ों के मकानों में अनेक तड़लियों के तयों की प्राप्ति से यह सिद्ध होता है कि उन दिनों वहाँ कताई का बड़ा प्रचार था। यह भी अनुमान होता है कि गरीब और श्रीर सभी कताई का काम करते थे, क्योंकि पहिले क्रीमती चीनी मिट्टी के तथा साधारण मिट्टी के और मोपी के बने हुये हैं। गर्म कपड़ों के लिए उन इस्तेमाल की जाती थी, और हलके बखो के लिए रुई। रुई के कुछ बारीक कपड़ों की, जो एक चाँदी के लोटे में लगे हुये थे, इण्डियन सेरटल काटन कमेटी की टेकनालोजिकल लेबोरेटरी में परीक्षा की गई। यह नमूना आजकल की मोटी जाति की भारतीय रुई के समान है। इसकी पेंठन की बनावट से

ज्ञाहिर होता है कि यह सिन्ध में आजकल पाई जाने वाली गासीपियम् (Gossypium) जाति से नहीं होसकती, जो कि बिना पेंठन-वाली होती हैं। इस अनुसन्धान से वर्तमान-काल के इस मत का खंडन होजाता है कि उत्तम भारतीय रुई—जो कि बेबिलियनों को ‘सिन्धु’ और यूनानियनों को ‘मिडन’ नामों से ज्ञात थी—रुई के पेड़ की उपज थी, और वास्तविक रुई नहीं थी” (Indian Historical Quarterly Journal, Vol III, P 116)। मोहनजोदड़ों की सभ्यता आज से साढ़े चार हजार वर्ष पूर्व की मानी जाती है।

महाभारत में भी कई स्थानों पर रेशमी, सूती और ऊनी वस्त्रों का उल्लेख पाया जाता है। राजसुययज्ञ में युधिष्ठिर को जिन लोगों ने अनेक प्रकार के कर दिये थे, उनमें भरुकच्छु अर्थात् भरोच के लोग कपास के सूक्ष्म वस्त्र पहने हुई एक लाख दासियों को कर के रूप में लेकर आये थे (शत दासी सहस्राणा कार्पासिक निवामिना, बलि च कृत्स्नमादाय भरुकच्छु निवामिन —सभा-पर्व ५१)। भड़ोच आज भी कपास के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ की कपास भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। कपास के सूक्ष्म वस्त्रों के लिये उन दिनों पाण्ड्य और चोल देश भी विख्यात थे (मण्डिरत्नानि भास्वन्ति कार्पास सूक्ष्म वस्त्रकं, चाल पाण्ड्या-वपि द्वारं न लेभाते ह्युपस्थितौ)। जिस प्रकार दक्षिणी देश सूती कपड़ों के लिए प्रसिद्ध थे, उसी प्रकार उत्तर के देश ऊनी और रेशमी वस्त्र बनाने के लिए ख्यातनामा थे। ये वस्त्र अनेक रंगों के होते थे और कलाबत्त लगाकर बनाये जाते थे। और

सम्राट् ने अल्पकाल में ही इस कला के ज्ञान और क्रिया-सम्बन्धी सम्पूर्ण बातों में दक्षता प्राप्त कर ली है और उसकी गुण-ग्राहकता के कारण इस दश के

अर्थात् उन से बनाये हुये, राकव अर्थात् रकु मृग से तैयार किये हुये, कांठज अर्थात् रेशम के ओर कुटीकृत अर्थात् उन के बिना धागे बनाये हुये वस्त्र युधिष्ठिर को भेंट किये गये थे । कम्बोजराज ( अफ़ग़ानिस्तान के समीप वाले प्रदेश का शासक ) ने युधिष्ठिर को बकरे की उन के, बिलों में रहनेवाले जन्तुओं की उन के, बिलियों की उन के और कलावत् के द्वारा बनाये हुये सुन्दर वस्त्र नज़राने में दिये थे । श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ( 'महाभारत मोसास', पृ० ३७०-७१ ) में लिखते हैं कि "कपास में सूत निकाल कर उन से कपड़े बनाने की कला हिन्दुस्तान में अत्यन्त प्राचीनकाल में थी । महाभारत-काल में अग्निशय सूक्ष्म वस्त्र बनाने की कला पूर्णता की पहुँच गई थी । ये महीन कपड़े पर्शिया, ग्रीस और रूम आदि स्थानों को भेजे जाते थे । रामन स्त्रियों को हिन्दुस्तान के बने हुये महीन कपड़ों से बड़ा प्रेम था ।"

चन्द्रगुप्त मौर्य के राजत्वकाल में भी ऊनी, सूती और रेशमी कपड़ों का चलन था । कौटिल्य ने "कांश में ग्रहण करने योग्य रत्नों की परीक्षा" के प्रसंग में लिखा है :—"भेद का उन सफ़ेद, गुलाबी और लाल रंग का होता है । उससे चार प्रकार के कबल बनाये जाते हैं, खचित ( बिना बटे सूत का ), वानचित्र ( अनेक रंगों के उन का ), खड संधात्य ( पट्टियाँ जोड़कर बनाया हुआ ), और नन्तुविच्छन्न ( एक से ताने-बाने का बनाया हुआ ) । प्रयोग के बिचार से ऊनी कम्बल ( वस्त्र ) के दस भेद हैं—कम्बल ( मोटा ), कौचपक ( चर-

वाहो वाला ), कुलमिनिका ( पगड़ी ), सौमिनिका ( बैल के ऊपर डालने योग्य ), तुरंगास्तरण ( घोड़े पर डालने योग्य ), वर्णक ( रंगीन ), तलिच्छक ( बिस्तर पर की चदर ), वारवाण ( लबादा, कोट ), परिस्तोम ( लम्बा-चौड़ा ), समन्तमद्रक ( हाथी पर डालने वाला ) । इनमें महीन चिकना, कोमल और उत्तम उन का बढ़िया होता है । काले रंग की आठ पट्टियों में बने हुये कंबल का नाम भिगसी है, यह वर्षा में बचाव के काम में आता है, अपसारक कंबल भी ऐसा ही होता है, ये ठाना कंबल नेपाल में बनते हैं । जंगली पशुओं की उन में बनाये जानेवाले वस्त्रों में संपुटिका ( पायजामे-योग्य ), चतुरश्रिका ( त्र्यश्रुगल लम्बा वस्त्र जिसके किनारे किसी विशेष रंग के न हो ), लवरा ( आटे या परदे के योग्य ), कटवानक ( माँटे धागों का, पर्दा-योग्य ), प्रावरक ( कटवानक का एक भेद ), सत्तलिका ( गलीचे के योग्य ) आदि भेद हैं । इनमें से बग़ाल का ( वाहिक ) सफ़ेद और चिकना, पाण्ड्य देश का ( पाण्डूक ) काला और मणि के समान चिकना, सुवर्ण-कुड्य देश का ( सौवर्ण कुड्य ) सूर्य के समान रक्त-वर्ण और मणि के सदृश चिकना होता है । ये वस्त्र अढ़े, पूरे, तथा इकहरे, दोहरे, तेहरे और चौहरे भी बनाये जाते हैं । काशी और पुड़ के वस्त्र-तन्तु इसी प्रकार के होते हैं । मगध, पुड़ तथा सुवर्ण-कुड्य के वृत्तों की छालों या पत्तों के रेशे प्रसिद्ध हैं । नाग वृत्त के पीले, बडहर के गेहूँ, और अगस्त्य के सफ़ेद तथा अन्य वृत्तों के मक्खन की तरह सफ़ेद रेशे होते

कुशाग्र-बुद्धि शिल्पकारों ने भी उक्त विषय की शिक्षा प्राप्त कर ली है। सब प्रकार के ऊनी और रेशमी कपड़ों की बुनाई चरम सीमा को पहुँच गई है। जो मामान

हैं। इनमें सुवर्णकुड्य के बने हुये कपड़े उत्तम होते हैं। इसी प्रकार चीन के बने हुये कौशेय, रेशमी वस्त्र तथा चीन-पट्ट भी होते हैं। मूँती कपड़ों में मटुरा (माधुर), कोकन (अपरान्तक), कलिंग (कलिङ्गक), काशी (काशिक), ढाका बगाल आदि (वाङ्गक), कौशाभ्यी (वात्सक) तथा माहिष्मती (माहिषक) के ग्राम-पाम के प्रदेशों के वस्त्र सर्वोत्तम होते हैं (कोटिल्य-अर्थशास्त्र, अधिकरण २, प्रकरण २६)।

हर्ष (६०६—४७ ई०) के समय में अत्युत्तम वस्त्र तैयार हो रहे थे। हर्ष की बहिन राजश्री के विवाह के अवसर पर वस्त्रों का वर्णन करते हुये 'वाण' ने लिखा है कि अलसी या सन के रेशों से बने हुये, मूँती वस्त्र, महीन कपड़े, रेशमी कपड़े, महीन रेशमी कपड़े, दुपट्टा, नेत्रवस्त्र कदाचित् नैनमुख, साप की कंचुली के समान, कोमल केल के अन्तर्गता भाग के सदृश मुलायम, फूँक से उड़ जानेवाले, केवल धूँने पर अनुभव होने वाले, तथा विभिन्न वर्ण वाले वस्त्रों में, मालूम होता था कि मानो सहस्रों इन्द्र-धनुष छा रहे हों जोंमें बादरैश्च मुकुलैश्च लाला जन्तुजैश्च अशुकैश्च नेत्रैश्च निर्मोकनिभैश्च अकठोरस्मा गर्भं कोमलैः निश्वास हार्थैः स्पर्शानुमेयैः दाम्प्योभिः सर्वतः स्फुरद्भिः इन्द्रायुधसहस्रैश्च संछादितम्—हर्ष-चरित, चतुर्थ उच्छ्वास)। युआनचवांग ने भी उस समय के कई प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है, जैसे (१) कौशेय—सूत और रेशम से बने हुये कपड़े, (२) लोम—पटमन और सन के रेशों से बने हुए कपड़े, (३) कम्बल—ऊनी

वस्त्र तथा कम्बल, (४) वन्य-जन्तु-लोम-वस्त्र—जो बहुत उत्तम और मुलायम थे और सरलता से काने और बुने जाते थे (Mukerji's 'Harsh' P 170)। “उन दिनों ऊन, रेशम और सूत से उत्तम वस्त्र बनाने की कला पूर्णता को पहुँच चुकी थी और यह विश्वास होता है कि जैसे उत्तम वस्त्र आजके दिन इंग्लैण्ड में बुने जाते हैं, उनमें भी बढ़िया उस समय यहाँ तैयार किये जाते थे, जेसे कि आज भी ढाका जैसे नगरों में तैयार होते हैं” (Vaidya, History of Medieval India Vol I, P 90 & 91, 1921)।

ढाका के वस्त्रों के सम्बन्ध में इन्साइ-क्लोपीडिया ब्रिटैनिका (Ency Bri Vol 22 11th Ed) में लिखा है कि “प्रायः सबसे अधिक प्रसिद्ध ढाका के बुने हुये वस्त्र हैं जिनमें कुल्लू प्रोद् अलकन वस्त्र, और बिना रंगी हुई मकड़ी के जाले-जैसी महीन सूत की मलमलें हैं। मलमलें ‘आवेरवाँ’, ‘हवा-बन्द’ और ‘शब-नम’ जैसे काव्यमय नामों से विख्यात हैं। अन्तिमोक्त इतने बढ़िया सूत से बुनी जाती हैं कि उसके २५० मील लंबे धागे में एक पाउण्ड सूत लगता है, उसके १० गज लंबे १ इंच चौड़े सादे थान के लिए ५०० रुपए देने पड़ते हैं। अनेक आद्यकालीन मूर्तियों के देखने से विदित होता है कि उनके मलमल के वस्त्र बुने हुये तो हैं, किन्तु वे इतने बारीक और पारदर्शी हैं कि केवल उन स्थानों पर जहाँ किनारे हैं या मिमटे पड़ गये हैं, वस्त्र दिखलाई पड़ता है, शेष मूर्ति नग्न मालूम होती है।”



विदेशों में लैयार होता है, वह सब हुजूर (सम्राट्) के कारखानों में प्राप्त होजाता है। इससे जन-समूह अलंकार-प्रियता के वशीभूत होगये हैं और उत्सवों की सजावट अनुमान की सीमा उल्लंघन कर गई है। जो कपड़ा मोल लिया जाता, खुना जाता अथवा भेट या सौगात में आता है, भली-भाँति सुरक्षित रक्खा जाता है। जो वस्त्र पहले का आया हुआ होता है, क्रमानुसार निरीक्षण के लिए पहले वही निकाला जाता, काटा जाता, सिला जाता, पहना जाता और प्रदान किया जाता है।

१—अधिकतर इतिहासकार इस विषय में एकमत हैं कि आर्य लोग वैदिककाल में दो ही वस्त्र धारण करते थे—एक धोती और दूसरा दुपट्टा। कोई-कोई व्यक्ति पगड़ी भी बांधते थे। 'वस्त्र बहुधा भेट की उन के देने जाते थे, यद्यपि बल्कलों का भी उपयोग होता था। सुवर्ण से अलंकृत वस्त्रों तथा रंग चिरंगे बेल-वृटदार परिधानों में उस समय सुख-सामग्री का भी प्रदर्शन हुआ था" (Cambridge-History of India, P. 101)।

"महाभारत के समय भारती आर्यों की पोशाक बिल्कुल सादी थी। दो धोतियों ही उनकी पोशाक थी। एक धोती कमर के नीचे पहन ली जाती थी। इनका नाम अन्तरीय और उत्तरीय था। इसके अतिरिक्त मिर पर उष्णीष (पगड़ी) थी। कया धनवान् और कया गरीब, सभी के लिए यही मार्ग था, और धोती पहनने की रीति एक ही ढंग की थी। पुरुषों की तरह, पर उनके वस्त्रों से लम्बे स्त्रियों के दो वस्त्र होते थे। प्राचीन समय में पारश्वत्य यूनानी और रोमन लोगों की पोशाक भी इसी ढंग की थी। हामर

ने प्राचीन काल के यूनानी स्त्री-पुरुषों की जिस पोशाक का चित्रण किया है, वह अनेक अंशों में उल्लिखित भारती आर्यों की पोशाक के समान ही है" (महाभारत मीमांसा, पृ० २६३-६४)।

मोहेनजोदड़ो की खुदाई में निकले हुए

पदार्थों के आधार पर पहनावे के सम्बन्ध में सर जान मार्शल ने लिखा है—“उच्च श्रेणी के पुरुषों के पहनावे में दो वस्त्र थे, एक अंचला जो कि आदिम कालीन सुमेरियनों के अंचले के समान कमर के चारों तरफ बंधा रहता था, और दूसरा सादा या आदर्श शाल जो कि बायें कंधे के ऊपर दाहने कंधे के नीचे से लाकर डाल लिया जाता था, जिसमें कि दाहिरी बाँह खुली रहती थी” (Sir John Marshall on Indu valley Civilization in the Illustrated Weekly of India 22nd January 1925)।

ज़ेरबर्मीज़ ( ४८४-६५ ई० पूर्व ) ने जय फ़ारस से यूनान पर चढ़ाई की थी, तो उसकी और से भारतीयों की जो सेना युद्ध में गई थी उसमें पैदल और रिमाला दोनों थे। उसके संबंध में ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस (Herodotus- VII 65) लिखता है कि “हिन्दुस्तानी सैनिक सूत के बने हुये वस्त्र पहने हुये थे, और बाँस के धनुषबाण धारण किये हुये थे। बाणों में लोहे की नोकें थी।”

चन्द्रगुप्त मौर्य और हर्षवर्द्धन के राजत्व-काल में भी प्रायः उपर्युक्त दो या तीन वस्त्रों ( धोती, चदर, पगड़ी ) के ही पहनने का रिवाज था। अनेक इतिहासकारों का मत है कि लोग प्राचीन काल में हर्ष के समय तक बिना मिले ही कपड़े पहनते थे।

## WHAT DO SCHOLARS AND THE PRESS SAY ?

विद्वद्भर पं० रमापतिसिंघ शास्त्री, बम्बई—जिस समय लोलुप लेखक यह जानते हुये कि जिन इन्द्रियों को संयत बनाने से मनुष्य-जन्म सफल होता है, उन्हीं इन्द्रियों को असंयत बनाने वाले साहित्य की वृद्धि से संपत्ति का संग्रह करते हैं और उन्मत्त भारत-सन्तान को विलाप के मार्ग में ले जाकर देश के भविष्य को शोचनीय बनाते हैं । उसी समय आपने एक ऐसे साहित्य का संग्रह किया है जो नितान्त अपेक्षित था ।

श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ, सुप्रेन्टेन्डेण्ट आर्कियालोजिकल डिपार्टमेण्ट, जोधपुर—‘आईने-अकबरी’ का यह अनुवाद हिन्दी-प्रेमियों के लिए एक गौरव की वस्तु होगी । अनुवाद में दिये हुये फुट-नोट और नक़्शे ऐतिहासिकों के लिए मोने में सुगंध का काम करते हैं । आशा है समर्थ हिन्दी-प्रेमी जनता और खासकर भारतीय पुस्तकालय इस अनुवाद को अपनाकर पाण्डेय जी का हाथ बटावेंगे ।

दैनिक प्रताप, कानपुर—कानपुर नगर के ख्यातनामा विद्वान् पं० रामलाल जी पाण्डेय ने इधर अनेक वर्षों के परिश्रम से, जो एक महान् कार्य सम्पादित किया है, वह भूरि-भूरि प्रशंसनीय और वन्दनीय है ।

पं० रामलाल  
कुशलता से  
च पुनः पुन  
कार्य किया ।  
किन्तु रामलाल  
विद्याव्यसन  
गौरव और

दे  
विद्वान् है  
लगन (आ  
अब यह ग्रं  
और पूर्ण  
ग्रन्थ से नि  
बहुत अधि  
सकता । अ  
समय में, अ  
सामाजिक,  
कोन ऐसा है  
हास की दृष्टि  
का सर्वोच्च  
अवर्णनीय है

### वीर सेवा मन्दिर पुस्तकालय

कान न०  
तख्त

वह विद्यार्णव है और  
ता, संलग्नता और  
मे महान् हृष्यामि  
इकर यह बड़ा भारी  
कर सकता था ।  
और आजीवन  
पी का होना

पादक और  
एक हसी  
के पश्चात्  
शाब्दिक  
अक्षर मूल  
उपयोगिता  
नहीं जा  
और ऐसे  
जायगी ।  
जा आदि  
से, इति-  
पने समय  
हेगी, वह

*The Rt Hon'ble Sir Tej Bahadur Sapru.*—I have taken interest in his literary activities. He deserves every encouragement for making such a contribution to the development of Hindi literature and bringing knowledge of an important epoch in Indian History within reach of the Hindi-knowing public.

*Sir Shafat Ahmad Khan,* Head of the History Department, University of Allahabad.—The translation is accurate and clear. I hope that Pt. Ram Pal Pandeya will be encouraged in this enterprise by the support of every one interested in the development of learning.

*M. M. Dr. Ganga Nath Jha.*—The language of the translation leaves nothing to be desired. I have read through the whole of the first part and did not find it necessary to pause over the unravelling of the syntactical construction of any single sentence, which cannot be said of many translations. The copious notes enhance the value of the original. They not only make the original more intelligible but also add to the knowledge provided by it. What makes the notes especially valuable is the citation of authorities and the references.

*Dr. Benoytosh Bhattacharya, M.A., Ph.D.,* Director, Oriental Institute, Baroda.—The annotations are not only accurate but also very illuminating. This translation of *Ain-i-Akbari* promises to be an epoch-making publication of very high literary merit and value.

*K. F. Nariman,* Ex Mayor, Bombay.—While, on the one hand, I have been greatly impressed by the extraordinary lucidity of its language, due to which, even for a man of my limited acquaintance with Hindi, it was easy to follow the translation, on the other hand, I have come to regard the *Ain* as a work, a wider reading of which is bound to help considerably in the removal of deplorable and vitiating communal differences and lead to a lasting fusion of the Hindu and Muslim cultures without which there can be little hope for the development of a single united Indian Nation. From this point of view the publication is extremely opportune and I congratulate Pt. Ram Lal Pandeya upon his having produced a work of such literary and national value.

*The Bombay Chronicle.*—He collected the materials in 1926 and the translation was commenced in 1927. After some years of painstaking and continuous work the translation was completed in 1935. The value of the translation has been considerably enhanced by addition of numerous footnotes giving references and explanations prepared after the most modern research system. A large number of attractive illustrations add to the charm of this epic translation. The translation has been seen by many of the most reputed literary personalities of India, who have given opinions bestowing high tribute upon the excellence, correctness, and literary beauty of the translation. In the opinion of the scholars the *Ain-i-Akbari* in Hindi ought to lead to a better and more abiding understanding between Hindus and Muslims. It will certainly enrich Hindi which is going to be the "Lingua Franca" of India. The present volume will not only prove valuable to scholars and historians but bring within easy reach of the lay public the otherwise ill-known social, religious, political and cultural conditions obtaining in India in the 16th century and particularly during Akbar's reign.

any one can become a patron by paying Rs. 100/- in a lump sum. Each patron will be entitled to receive all the 50 parts of the *Ain-i-Akbari* as and when published. Besides the names of all the patrons with other particulars will be printed at the end of the book. The price of each copy has been fixed at Rs. 2/- and thus every patron will nearly get back his money in the shape of the volumes of the *Ain*. But what is much more important, every patron will by his timely assistance ensure the publication of such a monumental work of great abiding value. It would be a pity and a shame if a work of such value were to remain unpublished for want of right appreciation and public spirit amongst us.

